जिनभाषित

वीर निर्वाण सं. 2530

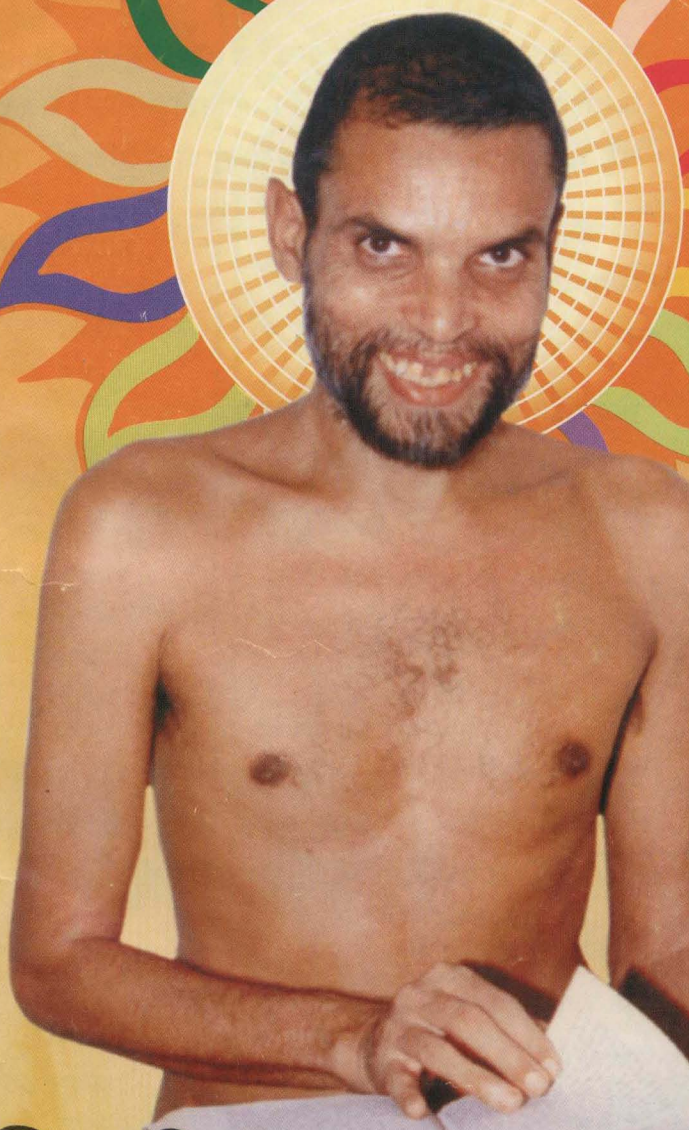

मुनि श्री 108 प्रवचनसागर जी

समाधि दि. 29 नवम्बर 2003

पौष/माघ, वि.सं. 2060 जनवरी - 2004

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आध्यात्मिक लोकगीत

धन्नालाल जैन शास्त्री

नन्हैय्या प्यारे हो आजा, तोह कराऊँ कौंड़ी के। कौंड़ी के कौंड़ी के
देव शास्त्र गुरु श्रद्धा बिन हम, भाव विनाये कौड़ी के।
रुपया फिर भी मूल्यवान हम, बिक गये पांच पसेरी के॥ कौंड़ी ...

काल अनन्त निगोद गंवाया, नरकों में दारुण दुख पाया।
करनी का फल चखते चखते, सिसक उठी जन-जन की काया॥
बड़े भाग्य चौपाया बन, धारे भव घोड़ा घोड़ी के॥ १॥ कौंड़ी ...

बोझा ढ़ोते जीवन बीता, खाने का नहिं रहा सुभीता।
चौपाया बन सही यातना, भूख प्यास में जीवन बीता॥
चल न सके तब खाते आये, हन्टर कोड़ा कोड़ी के॥२॥ कौंड़ी ...

कष्ट सहन करते युग बीते, कान पड़ा प्रभु नाम कहीं ते।
राग द्वेष मद मोह गरलभी, सुधा समझ आये हम पीते॥
पुण्ययोग नर बने चक्र में, फँस गये मोड़ा मोड़ी के॥३॥ कौंड़ी ...

देव योनि में क्षुद्रदेव बन, औरों के ऐश्वर्य देख धन।
हीनभावना से पीड़ित हो, युग युग तक रोया द्रोही मन॥
भाव बिगाड़े आर्तध्यान में, विछुड़े जोड़ा जोड़ी के॥४॥ कौंड़ी ...

देव वही जो वीतराग हो, जिसे त्रिलोक त्रिकाल ज्ञात हो।
औरों को कल्याण हेतु उपदेश प्रदाता, यथा भ्रात हो॥
ऐसे सच्चे देव छोड़ क्यों भटके, लाल निगोड़ी के॥५॥ कौंड़ी ...

जब आबे पावन पर्यूषण, धरम धार काटें हम दूषण।
शास्त्र सीख मानो, गुरु सेवा करो, बनो त्रिभुवन के भूषण॥
फँसो न मत्सर मान बढ़ायक, छल में होड़ा होड़ी के॥६॥ कौंड़ी ...

नन्हैया प्यारे हो आजा,
बाबा रे प्यारे हो आजा, तोहि सुनाऊं कौंड़ी के।

रिटा. डिप्टी डायरेक्टर इन्डस्ट्रीज
कानपुर (उ.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रजि. नं. UP/HIN/29933/24/1/2001-TC डाक पंजीयन क्र.-म.प्र./भोपाल/588/2003

जिनभाषित

मासिक

जनवरी 2004

वर्ष 2, अङ्क 12

सम्पादक
प्रो. रतनचन्द्र जैन

◆

कार्यालय
ए/2, मानसरोवर, शाहपुरा
भोपाल- 462 039 (म.प्र.)
फोन नं. 0755-2424666

◆

सहयोगी सम्पादक
पं. मूलचन्द्र लुहाड़िया, मदनगंज किशनगढ़
पं. रतनलाल बैनाड़ा, आगरा
डॉ. शीतलचन्द्र जैन, जयपुर
डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौत
प्रो. वृषभ प्रसाद जैन, लखनऊ
डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती', बुरहानपुर

◆

शिरोमणि संरक्षक
श्री रतनलाल कँवरीलाल पाटनी
(मे. आर.के.मार्बल्स लि.)
किशनगढ़ (राज.)
श्री गणेश कुमार राणा, जयपुर

◆

प्रकाशक
सर्वोदय जैन विद्यापीठ
1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,
आगरा-282002 (उ.प्र.)
फोन : 0562-2151428, 2152278

◆

सदस्यता शुल्क

शिरोमणि संरक्षक	5,00,000 रु.
परम संरक्षक	51,000 रु.
संरक्षक	5,000 रु.
आजीवन	500 रु.
वार्षिक	100 रु.
एक प्रति	10 रु.

सदस्यता शुल्क प्रकाशक को भेजें।

अन्तस्तत्त्व

		पृष्ठ
◆ आपके पत्र धन्यवाद		2
◆ सम्पादकीय	: आदर्श समाधि मरण	3
◆ आशीर्वाद	: आचार्य श्री विद्यासागर जी	4
◆ मंगल प्रवचन	: आचार्य श्री विद्यासागर जी	5
◆ लेख		
● मोक्षपथ के सजग प्रहरी ...	: ब्र.पवन जैन, ब्र. कमल जैन	7
● गुरु के पीछे चले तो	: मुनिश्री सुधासागर जी	9
● प्रक्षाल और अभिषेक	: स्व. डॉ. लालबहादुर शास्त्री	10
● सन्तान संहार का सूतक	: ब्र. शांतिकुमार जैन	12
● अभिनन्दनीय का अभिनन्दन	: प्रो. रतनचंद जैन	14
● सिरि भूवलय की रहस्यमय...	: डॉ. स्नेहरानी जैन	16
● अनर्गल-प्रलापं वर्जयेत्	: मूलचन्द्र लुहाड़िया	22
◆ जिज्ञासा-समाधान	: पं. रतनलाल बैनाड़ा	27
◆ ग्रन्थ समीक्षा		
● स्वतन्त्रता संग्राम...	: डॉ. जयकुमार जैन	15
● कल्पद्रुम विधान	: डॉ. रतन चंद जैन	26
● कुन्दकुन्द का कुन्दन	: डॉ. बी.एल. जैन	आवरण पृष्ठ 3
◆ प्राकृतिक चिकित्सा		
● अनमोल हैं हमारी आँखें	: डॉ. वन्दना जैन	26
◆ कविता		
● और वह चली गई	: डॉ. वन्दना जैन	9
● आध्यात्मिक लोकगीत	: आवरण पृष्ठ	4
◆ समाचार		29 -32

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपके पत्र, धन्यवाद : सुझाव शिरोधार्य

'जिनभाषित' (दिसम्बर०३) मेरे समक्ष है। डॉ. शीतलचन्द्र जी द्वारा लिखित सम्पादकीय सामयिक-सटीक लगी। जैन न्याय-दर्शन ग्रन्थों के प्रकाशन की समस्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। हमें तो बड़ा आश्चर्य होता है कि एक-एक चातुर्मास में प्रदर्शन, शोर सराबे, मल्टी कलरर्ड पत्रिकाओं, स्मारिकाओं के नाम पर एक -एक स्थल पर करोड़ों रुपये समाज द्वारा ही पानी की तरह बहा दिये जाते हैं। यह सब साधु समाज के मार्गदर्शन में ही होता है।

क्या हम इस प्रकार का कदम नहीं उठा सकते कि प्रत्येक चातुर्मास की अमिट यादगार अथवा पंचकल्याणक महोत्सव अथवा विधान समारोह की यादगार में एक आर्ष प्रणीत दुर्लभ ग्रन्थ का प्रकाशन करें। यदि साधु संघों का ध्यान इस ओर जाता है तो निश्चित प्रतिवर्ष अनेक ग्रन्थों का प्रकाशन हो सकता है।

सभी को ज्ञात है कि आचार्य श्री १०८ विमलसागर जी महाराज की ७५ वीं जन्म जयन्ती पर ७५ ग्रन्थों का अनूठा प्रकाशन उपाध्याय भरत सागर जी महाराज की पावन प्रेरणा से किया गया था, जो कि अद्वितीय ऐतिहासिक उपलब्धि के रूप में आज भी विद्वानों के मानस पटल पर अंकित है।

जैन न्याय के मूर्धन्य विद्वान् डॉ. दरबारी लाल जी कोठिया के साथ मिलकर अष्टसहस्री का सम्पादन किया एवं ग्रन्थ का प्रकाशन जैन विद्या संस्थान श्री महावीर जी से हुआ। सीमित संसाधनों के रहते हुए भी अनेकान्त ज्ञान मंदिर शोध संस्थान बीना (सागर) म.प्र. द्वारा प्रमाण निर्णय-आ. वादिराज जी, आप्तमीमांसावृत्ति- आ. वसुनंदी जी, परीक्षामुख-आ. माणिक्यनंदी प्रकाशन किया जा चुका है। संस्थान इस दिशा में निरंतर प्रयासरत है।

'जिनभाषित' की सामग्री उन्नत , मुद्रण, साज-सज्जा सभी अच्छी है। पत्रिका निरन्तर प्रगति पथ पर बढ़ती रहे।

ब्र. संदीप 'सरल'
बीना (सागर)

संशोधन

'जिनभाषित' के दिसम्बर 2003 अंक में पृष्ठ 28 'बुन्देलखण्ड के जैनतीर्थ' ग्रन्थ समीक्षा में लेखक का नाम श्री कैलाश मड़बैया छप गया है। दर असल समीक्षा के लेखक समीक्षाकार श्री 'विकल' भोपाल हैं।

सम्पादक

'जिनभाषित' अंक १० (नवम्बर २००३) मिला। कवर पृष्ठ पर भगवान आदिनाथ (सर्वोदय तीर्थ अमरकंटक) का नयनाभिराम चित्र देखकर मन प्रमुदित हुआ तथा सिर श्रद्धा से झुक गया। सम्पादकीय - 'सदलगा सदा ही अलग' ने उक्त पावन गांव की सजीव झांकी ही प्रस्तुत कर दी। पूज्य आर्यिकारत्न आदर्शमती माताजी का जहाँ भी चातुर्मास होता है वहाँ 'जंगल में मंगल' हो जाता है।

'घोषित दान की अनुपलब्धि' लेख में ब्र. शान्ति कुमार जैन के 'दान राशि' के सम्बन्ध में विचार पढ़े। निःसन्देह यह शाश्वत सत्य है कि दान राशि घोषित कर देने के बाद एक क्षण के लिए भी उस राशि पर गृहस्थ (श्रावक) का अधिकार नहीं रह जाता। परन्तु कई जगह देखा जाता है कि दान देते समय व्यक्ति यथाशक्ति दान देता है, परन्तु उस दान राशि का सही सदुपयोग नहीं होता वरन् कुछ व्यक्ति उसे मनमाने ढंग से उपयोग में लाने लगते हैं। हमें एक वाकया याद है। एक आचार्य के सानिध्य में एक मण्डल विधान का भव्य आयोजन हुआ। जिसमें हर काम की अच्छी बोली लगी। उसी बोली की राशि में से लगभग ८१.००० रु. की राशि विधि-विधान कराने वाले पंडित जी ले गये। इसके बावजूद जन चर्चा रही कि लगभग एक लाख बचना चाहिए, परन्तु मुख्य कर्ता-धर्ता लोगों ने न हिसाब रखा न हिसाब देते हैं। ऐसी स्थिति आज अनेक स्थानों पर है कि समाज के नाम पर आयोजन करो, धन अपनी अंटी में करो और भगवान तथा मुनियों की जय बोलो। यदि ऐसा नहीं है तो फिर धार्मिक संस्थायें प्रचार के नाम पर लाखों रुपये पानी की तरह कैसे बहा रहीं हैं ?' दैनिक भास्कर' जैसे अखवारों में पूरे पेज के विज्ञापनों हेतु पैसा कहाँ से आ रहा है। मेरा यह कहना नहीं है कि दान की राशि न दी जाये, दान की राशि अविलम्ब देना चाहिए।

श्रमणाचार में एकल विहार का निषेध लेखक डॉ. श्रेयांस जैन बड़ौत का लेख समसामयिक तथा दिशा निर्देश देता है। बालवार्ता 'सबसे बड़ा कांटा' डॉ. सुरेन्द्र 'भारती' तथा 'रेलवे टाइम टेबल में जैन संस्कृति' द्वारा डॉ. कपूर चंद जैन एवं डॉ. ज्योति जैन ने महत्वपूर्ण जानकारी दी है। आदरणीय पं. रतनलाल बैनाड़ा के 'जिज्ञासा-समाधान' तो पत्रिका की रीढ़ हैं। वस्तुतः जैन गजट में जबसे शंका-समाधान स्तम्भ बंद हुआ है, तब से इस पत्रिका ने जिज्ञासा-समाधान प्रस्तुत कर एक बड़ी कमी को पूरा किया है। विज्ञापनों के बिना तथा व्यावसायीकरण की प्रवृत्ति से परे रखकर आपके सुयोग्य मार्गदर्शन में यह पत्रिका निष्पक्ष रहकर दिशा निर्देशन का कार्य करती रहे, भविष्य में भी यह अपेक्षा रहेगी।

डॉ. नरेन्द्र कुमार जैन
वरिष्ठ सम्पादक-पार्श्व ज्योति, सनावद (म.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

आदर्श समाधि-मरण

समाधिसम्राट् संतशिरोमणि प.पू. आचार्य विद्यासागर जी महाराज के संघस्थ श्रेष्ठ साधक प.पू. मुनि श्री प्रवचनसागर जी महाराज का सल्लेखनापूर्वक आकस्मिक, किंतु आदर्श समाधि मरण दिनांक ९.११.२००३ को कटनी में हो गया। दो चार दिन में ही अप्रत्याशित रूप से घटी हुई यह घटना यद्यपि संघ के साधुजनों एवं संघ से जुड़े श्रद्धालु, श्रावक-श्राविकाओं के लिए सहसा आश्चर्य मिश्रित दु:ख की बात हो सकती है, तथापि मुनिश्री ने रोग के ऐसे भयंकर आकस्मिक आक्रमण के समय भी जिस प्रकार परिणामों में समता धारण करते हुए आत्म चेतना सहित अत्यंत शान्त भाव से सल्लेखनापूर्वक देहत्याग किया, वह हम सब के लिए गौरव एवं प्रसन्नता का विषय है।

बेगमगंज में जन्मे बाल ब्रह्मचारी चन्द्रशेखर जी जिस प्रकार शान्त, मौन एवं आत्मस्थ रहा करते थे, उनके जीवन की वही छवि मुनि अवस्था में भी बनी रही। ब्रह्मचारी निरंजन जी और ब्रह्मचारी चन्द्रशेखर जी की जुगल जोड़ी का साथ शिक्षाकाल, दीक्षाकाल और साधनाकाल में सर्वदा बना रहा। एक बार युगल ब्रह्मचारी मेरे निमंत्रण पर किशनगढ़ शिक्षण शिविर में शिक्षक के रूप में आए थे। तब मुझे उनके निकट रहने का अवसर मिला था। वैसे उदासीन आश्रम इंदौर में अनेक बार उनसे मिलना होता रहा। मैं उनकी निस्पृह साधना से अत्यंत प्रभावित था। दोनों ब्रह्मचारियों के मन में धीरे-धीरे वैराग्य बढ़ रहा था और वे प.पू. आचार्य विद्यासागर जी महाराज के साथ मुनिदीक्षा प्राप्त कर पू. मुनि निर्णयसागर जी और मुनि प्रवचनसागर जी बन गए।

संयोग की बात है कि समाधि के केवल १५-२० दिन पहले ही प.पू. आचार्यश्री ने दोनों मुनिराजों को स्वतन्त्र बिहार के लिए अमरकंटक से कटनी की ओर भेजा था। अनायास क्षणकराज मुनि श्री प्रवचनसागर जी की समाधि का सौभाग्य कटनी की धरती को प्राप्त हुआ।

मैं, तथा बम्बई के नरेश भाई व जयसुख भाई, हम तीनों शिक्षणशिविर में भाग लेने ईसरी जा रहे थे। मार्ग में खजुराहो में पू. मुनिश्री की अस्वस्थता के समाचार मिले और हम उसी समय कटनी पहुँच गए। कटनी में मैं, पू. मुनि श्री प्रवचनसागर जी के पास दिनांक २९.११.२००३ को प्रात: लगभग १.५ घण्टा रहा। मैंने पाया कि मुनिश्री के अधो शरीर की मांस पेशियाँ जकड़ रही थीं, किंतु मुनिश्री की चेतना पूर्णत: जाग्रत थी और उपयोग आत्मस्वरूप में लीन था।

लगभग तीन माह पूर्व अमरकंटक वर्षायोग के समय मुनिश्री को प्रात: काल शौच जाने के बाद हाथ धोते समय एक कुत्ते ने हाथ में काट लिया था। कुत्ते के काटने का घाव साधारण था और उसका ठीक उपचार हो गया था। मुनिश्री ने काटने वाले जिस कुत्ते को पहचान कर बताया, वह कुत्ता ठीक हालत में स्वस्थ घूम रहा था। इसलिए उसके पागल होने का संदेह न स्वयं मुनिश्री को हुआ और न किसी और को। संभवत: मुनिश्री के द्वारा कुत्ते को पहचानने में भूल हुई हो।

जब समाधि के दो चार दिन पूर्व मुनिश्री को पानी देखने से घबराहट होने लगी, तब यह सन्देह हुआ कि मुनिश्री को उस समय पागल कुत्ते ने काट लिया था। किंतु मुनिश्री की संयम साधना का ही यह ज्वलन्त चमत्कार रहा कि पागल कुत्ते के काटे जाने पर प्राय: हो जाने वाली शारीरिक और मानसिक विकृतियाँ मुनिश्री को सर्वथा नहीं हुईं। इधर शरीर में विष का प्रभाव बढ़ रहा था और उधर मुनिश्री के उपयोग में आत्म चेतना बढ़ रही थी। मुनिश्री ने सचेत अवस्था में चारों प्रकार के आहार का त्याग किया और पीछी हाथ में लेकर प.पू. आचार्यश्री को परोक्ष नमोऽस्तु किया। रत्नत्रय की आराधना के बल पर मुनिश्री ने इस भयानक रोग के उपसर्ग को समतापूर्वक सहन कर सामने खड़ी मौत पर निराकुल परिणामों से मानसिक विजय प्राप्त की और एक उत्कृष्ट समाधिमरण का आदर्श उपस्थित किया। ऐसे मृत्युविजेता उपसर्गजयी समतापरिणामी महान् मुनिराज श्री प्रवचनसागर महाराज को मेरा बारंबार नमन।

मूलचंद लुहाड़िया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री प्रवचनसागर जी के लिए आशीर्वाद

समाधिस्थ मुनि श्री प्रवचनसागर जी को दि. २७.११.०३ को नैला (अकलतरा) से फैक्स द्वारा कटनी भेजा गया आ. श्री विद्यासागर जी का उद्बोधन

'१. आत्मतत्त्व को ही मुख्यता देना है।

२. आजतक जो कुछ भी अध्यात्म पाया है, उसी को स्मृति में लाना है।

३. शरीर की अशुचिता एवं नश्वरता के बारे में चिंतवन करना है।'

समाधि २९.११.०३ शनिवार को ११ बजकर २० मिनिट पर कटनी म.प्र. में

संस्मरण

कल को का भरोसो है ?

हाँ, यह वाक्य मुनिश्री जी कहते थे। जिस दिन से उन्होंने दिगम्बरी दीक्षा धारण की, उस दिन से मानो अंतराय का और उनका चोली-दामन का साथ हो गया। इसके बाबजूद भी उनमें उपवास करने में गजब का उत्साह रहता था। दो-दो अन्तराय के बाद जब पूज्य आचार्यश्री के चरणों में मुनिश्री प्रत्याख्यान के समय उपवास का निवेदन करते थे, तब पू. आचार्यश्री कहते थे कि अभी आहार तो ठीक हो जाने दो। तब मुनिश्री का यही निवेदन रहता था कि 'कल को का भरोसो है' और आचार्यश्री का आशीर्वाद का वरदहस्त उठ जाता था। क्या मालूम था कि सचमुच में यह वाक्य मुनिश्री सार्थक कर अल्प समय में हमारा साथ छोड़कर मृत्यु महोत्सव पूर्वक चले जायेंगे, हमसे विदा ले लेंगे।

अद्भुत निरीहवृत्ति- सन् १९९७ में दीक्षा के समय उनके लिए लिखने हेतु एक पैड दिया गया था, जो सन् २००३ तक उनके पास रहा। मात्र ४-६ पेज लिखे हुए थे। ऐसे महान् साधक थे हमारे मुनिश्री प्रवचनसागर जी।

उन्होंने एक करोड़ णमोकार मंत्र की जाप का संकल्प लिया था, जिसमें ३४३०१ माला × १०८ = २७,०४,५०८ मंत्र फेर लिये थे।

चारित्रशुद्धि के १२३४ उपवासों का संकल्प लिया था, जिसमें उन्होंने ३५० उपवास कर लिये थे।

गृहस्थ जीवन में श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र की ३८ वंदनाएँ की थीं।

मुनि श्री प्रसादसागर जी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मंगल प्रवचन

समाधिस्थ मुनि श्री प्रवचनसागर जी की श्रद्धांजलि सभा के समय दिया गया
प.पू. १०८ आचार्य श्री विद्यासागर जी का उद्‌बोधन

जिस आत्मा के माध्यम से यह सारा संसार चलता रहता है उसकी बात अभी आपके सामने घंटों से कही जा रही है, इस आत्म तत्त्व को जानने के लिए ..... गुब्बारा होता है, उसमें हवा रहती है, यदि हवा निकाल दी जाए, तो उसका अस्तित्व ही नहीं रहता। उसी प्रकार आत्मतत्त्व देखने में नहीं आता किन्तु ध्यान रहे पूरा का पूरा संचालन उसी के हाथों में है। अब वह स्वतंत्र रहना चाहे तो रह सकता है, लेकिन वह स्वतंत्र न रहकर के (Second) रूप में आ जाता है। अत: दूसरा रूप वह शरीर को ग्रहण कर लेता है उसमें स्वयं को रख देता है। यह अनादिकालीन इस तरह की परम्परा संसारी जीव के साथ चल रही है। एक रहस्य को समझ लेते हैं, ज्ञात कर लेते हैं, तो फिर दुनिया के सारे-सारे परिश्रम को छोड़ देते हैं। क्योंकि मार्ग से भटकना व मार्ग में चलना दो अलग-अलग बातें हैं। मार्ग होकर के भटकना संभव नहीं व जब तक कि वह भटका रहता है तब तक वह मार्ग में नहीं। तो मार्ग में ऊपर चढ़ने के बाद भटका नहीं जाता, किन्तु उसको प्राप्त किया जाता है। आज तक जो भटका है वह चलना नहीं भटकना था। अब चलना ये है जो प्रारंभ किया गया किसी एक दिशा में चलना होता है भटकना नहीं। उसमें गति कम भी की जाती है वो कहीं ज्यादा भी रहती है। गतिमान व्यक्ति जो लक्ष्य की ओर जा रहा है वह मार्गी कहलाता है उसकी चर्चा हो रही है। एक व्यक्ति ने मार्ग को चुना मार्ग पर आरूढ़ हुए मार्गी बने व कुछ सामर्थ्य से चलना प्रारंभ किए। मैं संक्षेप में कह रहा हूँ तो गाड़ी कई प्रकार की हुआ करती है। हमारे पास टिकट है। हम तो मार्ग पकड़ चुके हैं। मार्ग बनता नहीं उसे बनाया जाता है। तो कुशल ड्रायवर ने सोचा ये धोखा देने वाला है, ये हमें संकेत दे दिया। जैसे कोई भी ट्रांसफोर्ट कंपनियों में जो लोग काम करते हैं वे अपने मालिक को कह देते हैं कि ऐसा-ऐसा हो गया, तो वह तो दगाबाज नहीं है, तो जो मार्गी है ऐसा नहीं कि मार्ग को छोड़कर अन्यत्र चले जाएँ। ड्रायवर से कह दिया जाता है कि यदि पंचर हो, एक्सीडेंट हो जाए, गिर जाए, टूट जाए, फूट जाए तो जल्दी से ड्रायवर को सिखा दिया जाता है कि सर्वप्रथम जहाँ गाड़ी में कुछ हो जाता है गाड़ी से नीचे उतर जाएं व अपनी रक्षा कर लें। और जब गाड़ी जाकर गड्ढे में गिर जाती है, ड्रायवर खड़े होकर देखता रहता है। बाद में जाकर उसको ठीक कर दिया जाता है। और नहीं तो बीमा तो है, बीमा है कि नहीं, इसलिए यदि जीवन की बीमा नहीं तो बनाइयो। हमारी बात सुनकर नहीं, पूछताछ कर नहीं, विश्वास के साथ बनाइयो। ऐसे जो जाने वाले थे उन्होंने उस गाड़ी को छोड़ दी व अपना मार्ग फिर से चलना प्रारंभ शुरू कर दिया। शरीर को उन्होंने शरण नहीं रखा। शरीर का जो दास होता है उसकी बड़ी बुरी दशा होती है। और गाड़ी से उतरना भूल जाता है।

उतरना तो था ही वह गिर जाता है। आप जिसकी बात कर रहे हैं, तो जब सामान्य ड्रायवर भी गाड़ी से इतना मोह नहीं करता, तो वह कैसे गाड़ी से मोह कर सकते हैं, उनके (संयमी) लिए तो नई अच्छी गाड़ी मिल गई है। तो वे बिना गाड़ी के हैं ही नहीं। जब भगवान के डिपार्टमेंट में हमें कुछ काम मिला है। वह रास्ता मिला है तो वह कार्य डिपार्टमेंट का हमेशा मिलता रहेगा। ये चिंता का विषय है ही नहीं जहाँ वो जाएंगे वहाँ से उनको गाड़ी मिल जाएगी। एक-एक कदम पर, एक -एक सैकण्ड पर, बस जोर लगाने की आवश्यकता मात्र है, बल्कि इसकी भी आवश्यकता नहीं है, अपने आप वह ज्ञात होता चला जाता है, कौन सी गाड़ी कौन से रोड पर है, तो वहाँ जो लोग होते हैं वे पूछताछ करते रहते हैं। जैसे ही एक स्टेशन से गाड़ी छूटती है, तो दूसरे स्टेशन पर पहले से अवगत करा दिया जाता है कि गाड़ी छूट चुकी है। जैसे ही गाड़ी छूटती है तो उनका यह कार्य होता है कि इधर-उधर से कोई गाड़ी न आए जिस पटरी में गाड़ी आ रही है उसकी सुरक्षा की जाती है। इसीप्रकार यह भी है जिसके पास सम्यक्दर्शन है, सम्यक्ज्ञान है व सम्यक्चारित्र जो थोड़े समय के लिए मिलता है, तो वह अपनी अंतिम दशा में अपने कार्य सुरक्षित रखता है। इस प्रकार प्रवचनसागर महाराज जी ने केवल गाड़ी चेन्ज की है। जब तक उनको मुक्ति नहीं मिलती तब तक टिकट तो है ही, तो हमें तो कोई चिंता का विषय ही नहीं है। आज एक गाड़ी छूट गई तो उनके पास पूरा का पूरा पता है।

वे ऐसे कुशल ड्रायवर रहे व थे इसमें कोई संदेह नहीं केवल गाड़ी चेंज हुई है। ड्रायवर चेंज नहीं और मुक्ति कब उपलब्ध होगी इसकी चिंता करने की आवश्यकता नहीं। ये गाडियाँ तो बदलना होगा, ये ध्यान रखो, ये गाड़ी हमेशा के लिए नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्यादा पेट्रोल खाए कम काम करे ऐसे गाड़ी को मत बनाओ। गाड़ी को आलसी मत बनाओ। पैट्रोल उतना डालो जितना आवश्यक हो। बहुत विश्राम से भी गड़बड़ हो जाता है। ज्यादा चलाना भी नहीं। चलाना उतना जितना पैट्रोल डालते हैं। जहाँ पैट्रोल नहीं डालते व गाड़ी चलाने लगे तो गाड़ी आवाज करने लगती है, मशीन खराब हो जाती है। और मशीन को बिगाड़ना भी नहीं। बीमार पड़ने का यह अर्थ नहीं कि मशीन को बिगाड़ कर दूसरी मशीन खरीद ली जाए, अपने आप छूट जाती है, तो छूट जाने दो आगे दूसरी मिल जाएगी। यह हमारी Direct लाइन नहीं है इसलिए ऐसा हो रहा है। पर जहाँ तक इसकी रोड है हम कहीं से भी चले जाएँ, पर वहाँ जाना है, इसको समझ जाएं। उसको भूलना नहीं, यही महत्वपूर्ण है। उन्होंने अंतिम समय में दृढ़ता से कार्य किया और आप लोगों के लिए एक तरह से जागृति दी है। आप लोग सोना नहीं, स्टेशन पास है, अपने समय पर सब काम कर लें। दुनिया के काम में बहुत योजना करते हो। अब एक बार एक यात्रा करनी है जिसके बारे में आपको कहां-कहां पर उतरना है, कहां उतरना अनिवार्य है और अपने को उतरना ही था, गाड़ी में इतनी ही पेट्रोल थी। लेकिन ज्यादा पेट्रोल खर्च कर कम चलते हैं उस अपेक्षा से उन्होंने कम पेट्रोल खर्च करके अल्प समय में जो रफ्तार से गाड़ी छोड़ी वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। और अगली गाड़ी के लिए उम्मीदवार होकर खड़े हो गए। और ऐसा करते उनको अवश्य मुक्ती मिल जाएगी। यह हमारी भावना है, कामना है उनको जल्दी मुक्ति मिल जाए। हमारी भावना से जल्दी मुक्ति मिल जाए। वे अपनी ही जागृति से अवश्य पाएंगे। उनको उदाहरण बनाने से उनको आदर्श बना लेने से जागृति हमेशा बनी रहती है। बड़े-बड़े तीर्थंकर हो गए कि जिनको देखकर लगता है कि हमारा नम्बर बहुत पीछे है। मैं हमेशा यही आशा करता हूँ कि हमारे पीछे से और बहुत तीर्थंकर होने वाले हैं। पीछे से हार्न(प्लीज) करके आगे बढ़ने वाले हैं। वो कहेंगे भैया हार्न(प्लीज) करके आगे बढ़ जाओ कोई बात नहीं हम आगे बढ़ रहे, आप पीछे से आ जाइए। यदि आपको चाहिए तो आप आइए नहीं है तो बीच से आइए हम आप को पहले कह रहे थे।

ये बात और है अभी हम आगे हैं जो हमारे तीर्थंकर हुए हैं आगे बढ़कर हुए हैं। उनके सामने भी बहुत अनंत जीवों की श्रृंखला थी व उस श्रृंखला को आदर्श बना कर आगे बढ़े व उनको आदर्श बना के हम चल रहे हैं। इस प्रकार हमारे पीछे भी लाइन है, यह लाइन ऐसी है यह खींचने वाली लाइन नहीं, आप अपने आप ही इस लाइन में जल्दी-जल्दी लग जाइए, ये भी अपने आप में बहुत मजा है, आनंद है। आप कूपन लेकर खड़े होते हैं, कभी घासलेट के लिए, कभी शक्कर के लिए, कहीं और किसी के लिए....। आप लाइन लगाओ हम भी लाइन में, यदि लाइन से बाहर आऐंगे तो सामान नहीं मिलेगा। ये लाइन में लगने वाला व्यक्ति अवश्य पाता है, ऐसा हमने समझा। यदि कहीं न कहीं घुसपैठ करता है, तो ये घुसपैठ नहीं चलेगी। ये सीधी लाइन होती है कभी भी आप लाइन में आकर खड़े हो सकते हैं। एक बार यदि आप लाइन में आ जाते हैं तो आप बेलाइन हो ही नहीं सकते। कहीं कुछ भी हो आकर वह पुनः लाइन में लग जाता है। तो जो लाइन में लगे हुए हैं उसकी हमें कोई चिंता ही नहीं थी। हमें जो ज्ञात हुआ उस अनुसार उन्हें खबर भेज दी गई। हमें पहले से ज्ञात था। व्यक्ति की असफलता की बात तो थी ही नहीं प्रवचनसागर जी में यह बात थी कि उन्हें जो भी आज्ञा देते, आदेश देते, उसके लिए वो हमेशा-हमेशा तत्पर रहते पालन करने के लिए। पास रहने के लिए कहा, तो हमने कहा पास तो हो ही। टिकट तो है आपके पास, तो वहीं पास-पास हैं, जो जितने पास होता है। समझदार होता है उसके लिए भावों के द्वारा पास बनाइए, केवल शरीर के द्वारा पास होकर के यदि भावों में निकटता नहीं है, तो वह निकट नहीं माना जाता। हमने निर्णयसागर व उनको प्रवचनसागर दोनों को उधर बिहार कराया।

वे बहुत साहस के साथ, शांति के साथ, ज्ञान के साथ, शरीर के साथ, शरीर से मोह नहीं था, हाँ जीर्णोद्धार हो जाए तो अलग बात है। लेकिन संयम को छोड़कर या गौणकर शरीर की मरम्मत के पक्ष में नहीं थे।

उन्होंने अपने रत्नत्रय की साधना के संकल्प से दिगम्बरत्व को इस एक समय के साथ भी जिस लगन से पालन किया अंत में जो परीक्षा में पास होना आवश्यक था उसको उन्होंने भूला नहीं व सफलता पाए। और क्या कहा जाए अनंत काल से संसारीप्राणी डूबता हुआ सा लग रहा है पर डूबा नहीं। डूब ही नहीं सकता क्योंकि वह जीव है। अंत समय में हमें जो आत्मानुभूति है, जो उसकी ओर दृष्टि रखते हुए सिद्ध बने हैं उनका स्मरण करना अनिवार्य होता है। उनके स्मरण के बल पर ही हम अजर-अमर अविनाशी आत्मतत्त्व को प्राप्त कर सकते हैं। भगवान से प्रार्थना करते हैं जो व्यक्ति अभी लाइन में नहीं हैं, वे लाइन पर आ जाएं जो लाइन पर हैं उनकी लाइन छूटे नहीं और हम भी उसी लाइन पर चलते रहें। जो लाइन है, उस लाइन पर चलते जाएं रूकें नहीं व रूकना है तो ठीक है रूक जाएं ,जो नट बोल्ट ढीले हो गए हैं उन्हें कस लें व आगे बढ़ जाएं....।

अहिंसा परमो धर्म की जय

संकलन- नंदकिशोर अकलतरा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोक्षपथ के सजग प्रहरी मुनिश्री १०८ प्रवचनसागर जी

ब्र. पवन जैन एवं ब्र. कमल जैन

परम पूजनीय मितभाषी वात्सल्य प्रदाता बालयोगी मुनि पुङ्गव श्री १०८ प्रवचनसागर जी महाराज का इस अल्पवय में सल्लेखना पूर्वक देह विसर्जन की बात को सुनकर सारा देश शोक सागर में डूब गया। मुनिश्री जिस समय श्री वर्णी दिगम्बर जैन गुरुकुल पिसनहारी मढ़िया जबलपुर में अध्ययनरत थे, उस समय सन् १९९० से १९९३ तक उनके सानिध्य में अध्ययन करने का सौभाग्य हम लोगों को प्राप्त हुआ, उस समय आप बाल ब्रह्मचारी चन्द्रशेखर जी के नाम से विख्यात थे। आपका जन्म २९ अक्टूबर १९६० बेगमगंज, जिला-रायसेन (म.प्र.) में हुआ था।

बाल ब्र. चन्द्रशेखरजी मध्यम कद, स्वर्ण सा दैदीप्यमान शरीर, द्रुत विलम्ब से रहित गमन, सदैव प्रसन्न मुद्रा, विषम परिस्थिति में अन्दर से प्रसन्न रहना, सफेद धोती-दुपट्टा, हाथ में मार्जन, साधर्मी के प्रति हृदय से वात्सल्य, मृदुभाषी, सरल परिणामी, आंखों से झरता करुणारस, मितभाषी, अकालवर्जित स्वाध्याय, शेष समय प्रभुगुण स्मरण की गुनगुनाहट, पूजन, भोजन, अध्ययन, शयन में समय की नियमबद्धता, शक्ति सीमित पर उसी में सन्तुष्ट, जलगालन, मलमोचन आदि प्रत्येक क्रिया विवेक पूर्वक सम्पन्न करना, विपरीत वातावरण में भी शांत रहना, कड़वाहट पीकर भी वातावरण को मधुरता प्रदान करने में अद्भुत क्षमता रखने वाले, बस यही था आपका अन्तर पटल।

ऐसे उदार हृदय महामन: के पास लगभग तीन वर्ष साथ में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। सबसे पहले आपने हम लोगों को पानी छानना सिखलाया था। चारित्र के प्रति आपकी अटूट आस्था थी। अणुव्रतों में क्वचित कदाचित कोई दोष लग जाता था तो आप तत्काल प्रायश्चित्त के रूप में रस त्याग या मालाएँ, एकाशन-उपवास आदि के द्वारा तत्काल व्रत शुद्धि करते थे। प्रात:काल चार बजे से जब तक सूर्योदय नहीं होता था तब तक मालाएँ फेरते या चिन्तन करते थे। इसके बाद स्नानादि क्रियाओं के बाद घंटों जिनेन्द्र भक्ति करते थे। आपके पूजन के वस्त्र, पूजन के बर्तन, पूजन की श्रेष्ठ सामग्री हमेशा अपने पास रखते थे, इसमें कभी भी प्रमाद नहीं किया। हमारे विद्यागुरु पंडित प्रवर पन्नालाल साहित्याचार्य जी हमेशा कहा करते थे कि ब्र. चन्द्रशेखरजी बड़े गंभीर पुरुष हैं, ये आचार्य शांतिसागरजी की तरह शांत हैं। आहार दान में आपकी बहुत रुचि थी यदि कोई साधु परमेष्ठी का गुरुकुल में पदार्पण हुआ, तो आप उनकी परिचर्या में हमेशा आगे रहते थे। गुरुकुल में सन् १९९० से १९९३ के बीच में लगभग २०-२५ ब्रह्मचारी भाई अध्ययनरत थे उस समय प्रतिदिन सबसे पहले सब भाईयों को भोजन कराते थे बाद में आप करते थे। आप समाज के झगडों से और ख्याति लाभ से कोशों दूर थे। उसके बाद २५ जनवरी १९९३ में जबलपुर पंचकल्याणक के समय गुरुकुल में तीन भाईयों को संघ में रहने की आज्ञा प्राप्त हुई, जिसमें ब्र. अरविन्दजी (मुनि सुमतिसागरजी) को मुनि क्षमासागर जी के साथ भेज दिया, ब्र. राजेश जी को संघ में रख लिया और ब्र. चन्द्रशेखरजी को इन्दौर आश्रम भेज दिया। वहाँ पर आप १९९३ से १९९६ तक अधिष्ठाता पद पर आसीन रहे। इस पद को सम्हालते हुए भी आप पद पर आसीन नहीं रहे अर्थात् इस पद को लेने के बाद कभी भी आपके आवश्यकों में क्षति नहीं हुई। इसके बाद २० अप्रेल १९९६ को तांरगा जी सिद्धक्षेत्र में आपने आचार्य श्री से क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की और इसी वर्ष के दिसम्बर माह में दुपट्टा का भी व्यामोह छोड़कर ऐलक दीक्षा को स्वीकार किया। लगभग १० महीने तक ऐलक के व्रतों का पालन करते हुये १६ अक्टूबर १९९७ को बाह्य आभ्यांतर परिग्रह को त्याग कर मुनिश्री १०८ प्रवचनसागर जी बने और निर्दोष रीति से २८ मूलगुणों का पालन करते हुए प्रतिदिन अन्तराय वाले अथवा अस्वस्थ साधुओं की सेवा दिन में दो बार करते थे। एक बार मुनिश्री से हमने पूछा महाराज आपको सेवा करने में प्रमाद नहीं आता, आप रोज दस -पांच साधुओं की सेवा करते हो, आप थक जाते होंगे, तब महाराजश्री ने उत्तर दिया कि भैया, साधुओं की वैयावृत्ति करना वह तो हमारा अन्तरंग तप है। यदि वैयावृत्ति नहीं करेंगे सो हमारा एक तप कम हो जायेगा। इस तरह से दोनों प्रकार के तपों के साथ में अपना समय व्यतीत करते हुए, आचार्यश्री के चरण सान्निध्य में अपना जीवन व्यतीत किया।

एक बार बहोरीबंद पंचकल्याणक के लिए मुनि प्रवचन सागरजी ४ मुनिराजों के साथ जबलपुर पधारे, तब मुनिश्री से हमने पूछा कि हे स्वामिन्! आचार्यश्री को छोड़कर आपने अलग विहार कैसे कर लिया। तब आप बोले, हमने कहाँ छोड़ा और निम्नलिखित पंक्ति सुनाई।

तव पादौ मम हृदये, मम हृदयं तव पदद्वयं लीनं

इस वाक्य को सुनाकर बोले भैया! गुरु की आज्ञा उल्लंघनीय नहीं होती। इस प्रकार के शांत स्वभावी साधु की समाधि की बात याद आती है तो आंखों में पानी आ जाता है। मुनिश्री परीषहों को भी बड़े समता भाव से सहन करते थे। २८.९.२००३ को अमरकंटक में जब आपको कुत्ता ने काटा, तब कुछ गहरे घाव हो गये थे, जो स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। उस समय किसी भक्त ने कहा कि कुत्ता के काटने पर यदि उस स्थान पर मिर्च लगा दी जाय तो जहर नहीं फैलता। तब किसी ने महाराज के उन घावों के ऊपर लालमिर्च बाँट करके लगा दी। घाव में मिर्च लगने की भयंकर पीड़ा को हंसते-हंसते सहन किया।

इस प्रकार अनेक उपसर्ग परिषहों को समता भाव से सहन करते हुये अपनी आयु के ४३ वें वर्ष में समाधिस्थ हुये।

मुनिश्री का अभाव अपूरणीय है। वीर प्रभु से प्रार्थना है कि भुज्यमान पर्याय से च्युत होकर मनुष्य पर्याय पाकर अमिट पुरुषार्थ को धारणकर अक्षय चारित्र के रथ पर चढ़कर शीघ्र ही अनन्त तथा अक्षय सुख के अनन्तकाल भोगी हों। हम सब आपके चरणानुगामी हों, इसी भावना के साथ शत शत नमन।

ईशरी आश्रम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनिवर श्री १०८ प्रवचनसागर महाराज पूर्ण चैतन्य अवस्था में समाधिस्थ

महामृत्युंजयी तपोसाधक दिगम्बराचार्य श्री १०८ विद्यासागरजी महाराज के आज्ञानुवर्ती सुशिष्य मुनिवर श्री १०८ प्रवचनसागर महाराज का कटनी में पूर्ण चैतन्य अवस्था में सल्लेखनापूर्वक समाधि मरण हो गया।

विस्तृत प्राप्त जानकारी के अनुसार मुनि श्री प्रवचनसागर एवं मुनि श्री निर्णयसागर महाराज आचार्य श्री की आज्ञा से सर्वोदय तीर्थ अमरकंटक से बिहार करके विगत् कुछ दिनों पूर्व ही कटनी पहुंचे थे, एकाएक मुनिश्री प्रवचनसागर जी महाराज गंभीर रूप से अस्वस्थ्य हो गये। उक्ताशय की जानकारी छत्तीसगढ़ में अतिशय धर्म प्रभावना करते हुये बिहार कर रहे पूज्य आचार्य श्री को प्रदान की गयी। आचार्य श्री के निर्देशानुसार श्री दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र बहोरीबंद (जिला कटनी) में विराजमान मुनि श्री समतासागर, मुनि श्री प्रमाणसागर, ऐलक श्री निश्चयसागर जी ने कटनी की ओर गमन किया। आचार्य श्री का संकेत प्राप्त होते ही मध्यान्ह १:०० बजे बिहार कर २७ कि.मी. दूर ग्राम में रात्रि विश्राम कर प्रात: ६.०० बजे पुन: २४ कि.मी. चलकर मुनि द्वय एवं ऐलक श्री कटनी पहुंचे।

विभिन्न आयुर्वेदाचार्यों एवं चिकित्सकों द्वारा अथक परिश्रम करने के पश्चात् भी मुनि श्री प्रवचनसागर जी का स्वास्थ्य निरंतर गिरता जा रहा था, तकरीबन २४ घटों के अंदर ही चिकित्सकों ने स्पष्ट घोषणा कर दी थी मुनिवर की स्थिति में सुधार असंभव है, मुनिश्री ने सल्लेखना का संकल्प लेकर अन्न जल त्याग कर दिया। मुनिश्री की सेवा में रत एक श्रावक ने बताया कि- जब मुनिश्री के हाथ पैरों में पूर्ण शिथिलता आ गयी, शरीर पूर्णत: कमजोर हो गया, ऐसी विषम परिस्थिति में भी मुनिश्री स्वयं को ही संबोधन देते रहे 'ये शरीर भी धोखेबाज है और ये धोखा दे ही गया'।

मुनि श्री समतासागर, मुनि श्री प्रमाणसागर, मुनि श्री निर्णयसागर, ऐलक श्री निश्चयसागर मुनिवर की समाधि साधना में पूर्णत: सहायक रहे। मुनिसंघ सजग एवं चौकन्ना होकर निर्विकल्प समाधि कराने में निरत रहा। मुनिश्री अंतिम समय तक पूर्ण चैतन्य एवं जागृत रहे। गंभीर रूप से रोग ग्रस्त होने पर भी मुनिश्री ने अपवाद मार्ग को अस्वीकार कर मुनियों के लिये अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत किया। यह भी एक संयोग रहा कि २९ नवम्बर को ही मुनिश्री का ४२ वाँ जन्म दिवस था, और जन्म का समय भी वही था जो उनकी समाधि का समय था। अंत समय न कोई बैचेनी, न घबराहट, न चेहरे पर शिकन नश्वर देह का त्याग करते समय यदि मुनिश्री के चेहरे पर कोई भाव था तो मात्र निर्विकल्पता एवं आत्मसंतुष्टि का।

मुनिश्री प्रात: ११:२० मिनट पर समाधिस्थ हुये। इसके पश्चात् उनकी अंतिम शोभायात्रा जैन धर्मशाला से प्रारंभ होकर झंडा बाजार, पुरानी बस्ती, शेर चौक, आजाद चौक, नदी पार होते हुये, दयोदय पशु सेवा केन्द्र पहुंची। मुनिवर की अंतिम शोभायात्रा में मुनि श्री समतासागर, मुनिश्री प्रमाणसागर, मुनि श्री निर्णय सागर, मुनिश्री प्रबुद्धसागर, ऐलक श्री निश्चयसागर जी प्रभात मंडल के ब्रह्मचारीगण (प्रभात मंडल के ब्रह्मचारीगण समाधि साधना में विशेष सहयोग देते रहे), प्रभात जैन मुंबई, डॉ. अमरनाथ सागर, डॉ. राजेश भोपाल, कवि चन्द्रसेन जैन, प्रकाश मोदी भाटापारा, संतोष सिंघई दमोह के साथ ही हजारों श्रद्धालुओं ने उपस्थित होकर अश्रुपूरित नेत्रों से मुनिवर को विदाई दी। अपनी सरलता, विद्वता, नि:स्पृहता के लिये प्रसिद्ध मुनिश्री की छबि प्रत्येक हृदय में अंकित हो गयी।

अमित पड़रिया

मुनि श्री प्रवचनसागर जी का जीवन परिचय

पूर्व नाम	:	ब्र. चंद्रशेखर शास्त्री
पिता	:	श्री बाबूलाल जी जैन
माता	:	श्रीमती फूलरानी जैन
जन्म स्थान	:	बेगमगंज, जिला रायसेन (म.प्र.)
जन्म दिनांक	:	29.11.1960
लौकिक शिक्षा	:	एम.कॉम. (प्रीवियस)
ब्रह्मचर्य व्रत कब/कहाँ	:	29.10.1987 श्री दि.जैन अतिशय क्षेत्र थुवौन जी, गुना (म.प्र.)
क्षुल्लक दीक्षा	:	20/4/1996, वैशाख शुक्ला तीज, शनिवार, वि.सं. 2053 अक्षय तृतीया
दीक्षा स्थल	:	श्री दि. जैन सिद्धक्षेत्र, तारंगा जी, जिला-महेसाणा (गुजरात)
ऐलक दीक्षा	:	19/12/1996, मार्गशीर्ष शुक्ला दशमी वि.सं. 2053, गुरुवार
दीक्षा स्थल	:	श्री दि. जैन सिद्धक्षेत्र गिरनार जी, जिला-जूनागढ़ (गुजरात)
मुनि दीक्षा	:	16/10/1997, अश्विन शुक्ला पूर्णिमा (शरद पूर्णिमा), गुरुवार वि.सं.2054
दीक्षा स्थल	:	श्री दि. जैन रेवातट सिद्धोदय सिद्धक्षेत्र नेमावर जी, जिला-देवास (म.प्र.)
दीक्षा गुरु	:	आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज
मातृभाषा	:	हिन्दी
समाधिस्थ		29/11/03, वि.सं. 2060 मगसिर शुक्ला छठ, शनिवार
समाधि के समय सान्निध्य		मुनि श्री समतासागर जी महाराज मुनि श्री प्रमाणसागर जी महाराज मुनि श्री निर्णयसागर जी महाराज मुनि श्री प्रबुद्धसागर जी महाराज ऐलक श्री निश्चयसागर जी महाराज

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'गुरु के पीछे चले तो तिर जाओगे'

मुनि श्री सुधासागर जी

अलवर, २३ जुलाई। 'गुरु के पीछे चलना सीख लिया तो इस संसार सागर से तिर जाओगे किन्तु गुरु को यदि अपने पीछे चलाने का प्रयास किया तो समझ लेना विनाश निश्चित है। जिन भव्य आत्माओं ने गुरुओं के, साधु-सन्तों के पीछे चल कर उनके ज्ञान, ध्यान, चर्या, साधना, भक्ति और त्याग-संयम को अपने जीवन में अंगीकार कर लिया, उनका कल्याण हो गया और जो सिर्फ नाम, पद, वर्ग, जाति की संकीर्णता में अपने मूल 'जैनत्व' को भूल गए वह भटकते ही रहेंगे। खुद को जानने वाला और दूसरों को जगाने वाला ही सच्चा पथगामी है। जैनत्व की नींव इसी सिद्धान्त पर कायम है।'

बून्द का नाम सागर नहीं है किन्तु बून्द के बिना सागर संभव नहीं है। जब बून्द-बून्द की तरह अग्रवाल, पल्लीवाल, खण्डेलवाल, जैसवाल सब अपने मूल तत्व 'जैनत्व' के रूप में एक जुट होंगे तब समाज के सागर का स्वरूप जैनत्व के मूल स्वरूप को ऊँचाईयों पर ले जाएगा।

उन्होंने इस बात पर पीड़ा व्यक्त की कि उन्हें आज अलवर में मंगल प्रवेश के दौरान मार्ग में पड़ने वाले जैन मंदिरों का परिचय यह कह कर दिया गया कि यह खण्डेलवाल, पल्लीवाल, अग्रवाल, जैसवालों का मंदिर है, परन्तु यह किसी ने नहीं कहा कि यह जिनेन्द्र प्रभु का मंदिर है।

जिन मंदिरों में वीतराग प्रभु विराजमान हैं, उनकी पहचान को वर्ग विशेष से जोड़कर सम्बोधन पर नाखुशी जताते हुए मुनिराज ने कहा कि सच्चा जैन वही है जो ३६ नहीं ६३ बनकर समाज की सेवा में अग्रसर रहता है। ऐसे ही लोग अपनी संस्कृति, भक्ति, संकल्प और पावनध्येय की रक्षा कर पाएंगे। मुनिराज ने स्पष्ट शब्दों में चेताया कि कम से कम इन ४ टाईटलों की दुर्गन्ध व वायरल के कीटाणु फैलाने वाले उनसे दूर रहें। उनके करीब वे ही लोग आएं जो एक सच्चे जैन के रूप में जैनत्व के प्रति श्रद्धा व निष्ठा रखते हैं। उन्होंने जैन समाज के बन्धुओं का आव्हान किया कि वे बून्द-बून्द को महासागर का रूप देने में अगुता बनें ताकि उस महासमुद्र से समाज के रत्न निकल सकें और एक दिन अलवर पूरे देश में अपनी अनूठी पहचान बनाकर प्रेरणा का स्त्रोत बन सके। मुनिराज ने जोर देकर कहा कि अपने को वर्ग-जातियों में नहीं बांटें, बल्कि जैन रूप में संगठित बनें। जो वीतराग प्रभु के मंदिर हैं, उनके न कोई मित्र हैं, न शत्रु फिर उन्हें जाति वर्ग में मत बांटो।

अपने जीवन में आचार विचार को सरल बनाया तो फिर प्रभु शरण का यही सही जैनत्व का परिचय है। उस अमूल्य अवसर को व्यर्थ मत खोने दो। उसका आज और अभी से सदुपयोग करना शुरु कर दो, पता नहीं फिर मौका मिलेगा या नहीं। एक सांस का भी जब पता नहीं कि वह आएगी भी या नहीं फिर जिनेन्द्र देव के सच्चे भक्त व सेवक बनें। मंदिर किसी के नहीं हैं यह याद रहे। हम सब तो शरणागत हैं। वहाँ धर्म की शरण में आकर आत्मा का स्वभाव का पता लगता है। धर्म की पहचान धर्म के धारण से ही संभव है अत: अपनी शाश्वत पहचान बनायें।

'अमृतवाणी' से साभार

कविता

और वह चली गई

जीवन के द्वार पर
मौत ने दस्तक दी
मैंने द्वार खोला
वह आयी
बैठी
बातचीत भी की
पर
शायद मेरी
जिजीविषा देखकर
वह उठी
कुछ मुड़ी
और फिर चली गई,

डॉ. वन्दना जैन
कार्ड पैलेस
वर्णी कालोनी, सागर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रक्षाल और अभिषेक

स्व. डॉ. लालबहादुर जी जैन शास्त्री

दि. जैन समाज में प्रक्षाल और अभिषेक ये दोनों प्रथाएँ सदा से चली आ रही हैं। अष्ट द्रव्य से पूजा जिस प्रकार अत्यधिक प्राचीन है उसी प्रकार प्रक्षाल और अभिषेक भी अत्यधिक प्राचीन है। यदि प्रक्षाल और अभिषेक को विकृति कहा जायगा तो अष्ट द्रव्य से पूजा भी विकृति का ही एक रूप कहा जायगा। लोग अभी तक यह भी नहीं समझते कि प्रक्षाल और पूजा में क्या अन्तर है। कुछ लोग तो यहाँ तक भी कहने की हिमाकत करते हैं कि प्रक्षाल का आत्म शुद्धि की दृष्टि से कोई महत्त्व नहीं है इसका मतलब तो यह हुआ कि प्रक्षाल की तरह अभिषेक और पूजा का भी आत्म शुद्धि की दृष्टि से कोई महत्त्व नहीं है। यह कहना कि प्रक्षाल तो मूर्ति पर जो रजकण लग जाते हैं उन्हें साफ करने के लिए किया जाता है यह सर्वथा कपोल कल्पित है। यहाँ हम प्रक्षाल और अभिषेक की अन्तर्दृष्टि को समझायेंगे।

अभिषेक- मूर्ति के ऊपर कलशों के द्वारा शिर पर जो जलधारा छोड़ी जाती है वह अभिषेक कहलाता है।

प्रक्षाल- मात्र चरणों पर जो जलधारा छोड़ी जाती है वह प्रक्षाल कहलाता है। अभिषेक की प्रक्रिया जो विधि-विधानपूर्वक होती है उसमें पर्याप्त समय लगता है, क्योंकि वहाँ क्षेत्रपाल, दिग्पाल आदि का आह्वानन किया जाता है, चारों दिशाओं में चार कलश स्थापित किये जाते हैं, उपयोगी मंत्र आदि का उच्चारण करना पड़ता है। अत: अभिषेक समय साध्य और श्रम साध्य होता है। लेकिन जिस भक्त के पास उतना समय नहीं होता और न मंत्रोच्चारण की उस प्रकार की योग्यता या शक्ति है वह चरणों पर जलधारा देकर ही अर्थात् प्रक्षाल करके ही अपनी सन्तुष्टि करता है। क्षालन का सामान्य अर्थ होता है धोना और अभिषेक का सामान्य अर्थ होता है स्नान। चरणों के धोने को स्नान नहीं कहा जाता अत: उसे प्रक्षाल ही कहा जाता है और स्नान को 'धोना' नहीं कहा जाता अत: उसे अभिषेक ही कहा जाता है। राजगद्दी पर बैठते समय राजा को भी जो स्नान कराया जाता है वह राज्याभिषेक ही कहलाता है न कि राज्य प्रक्षालन। यह बात दूसरी है कि कुछ लोग नासमझी के कारण अभिषेक को प्रक्षाल या प्रक्षाल को अभिषेक कहें। यहाँ न रजकण पोंछने का कोई प्रश्न ही है और न रजकणों के पोंछने का आगम में कोई उल्लेख है।

शंका- हम मानते हैं कि सिर पर कलश द्वारा जलधारा देते हैं, अभिषेक होता है। लेकिन हम यह क्यों भूल जाते हैं कि जिन अरहंत भगवान् की यह प्रतिमा है वे अरहंत भगवान् तो कभी स्नान नहीं करते थे, फिर अरहंत भगवान् की प्रतिमा का अभिषेक क्यों किया जाता है ? मुनि के २८ मूलगुणों में ही स्नान का निषेध है, फिर अरहंत तो बहुत बड़ी चीज है। अत: प्रतिमा के अभिषेक से उसकी वीतरागता खंडित होती है।

समाधान- अरिहंत का अभिषेक नहीं होता। अत: अरिहंत की प्रतिमा का भी अभिषेक नहीं होना चाहिए इस दलील को यदि ठीक मान लिया जाय तब तो हम अरिहंत की प्रतिमा को रथ में भी नहीं बैठा सकते, क्योंकि अरिहंत तो कभी रथ में बैठते नहीं हैं। प्रतिमा को हम गोदी में लेकर भी स्थान से स्थानान्तर नहीं कर सकते, क्योंकि अरिहंत भगवान् कभी किसी की गोदी में नहीं बैठते। इसी तरह प्रतिमा का विमान में विराजमान कर निकालना भी उचित नहीं माना जा सकता। कहने का अभिप्राय यह है कि साक्षात् अरिहंत के प्रति जो व्यवहार भक्त का होता है वही व्यवहार अरिहंत की प्रतिमा के साथ होना चाहिए , कम अधिक नहीं, यह गलत है। यह ठीक है कि वीतराग अरिहंत की प्रतिमा भी वीतराग है, फिर भी साक्षात् अरहंत की पूजा-विधि और अरहंत प्रतिमा की पूजा-विधि एक सी नहीं होती। साक्षात् अरहंत का स्पर्श करने के लिए स्नान की आवश्यकता गृहस्थ को नहीं होती, जबकि अरिहंत की प्रतिमा बिना स्नान किये स्पर्श नहीं कर सकता। उदाहरण के लिए किसी साक्षात् मुनि का जो साधु परमेष्ठी का रूप है हम बिना स्नान के स्पर्श करते हैं, किन्तु साधु परमेष्ठी की प्रतिमा का हम स्नान किये बिना स्पर्श नहीं कर सकते।

जैनागम में जो नव देवों की मान्यता है उनमें अरहंत देवता अलग हैं और अरहंत प्रतिमा देवता अलग हैं। यदि हम दोनों एक ही मानकर चलें तो देव शास्त्र गुरु की पूजा में जब देव की पूजा हम कर चुकते हैं तब फिर चैत्य (प्रतिमा) पूजा क्यों करते हैं ? इससे स्पष्ट है कि अरहंत और अरहंत की प्रतिमा भिन्न-भिन्न भी हैं। आगम में नव देवताओं के नाम इस प्रकार गिनाये हैं अरहंत १, सिद्ध २, आचार्य ३, उपाध्याय ४, साधु ५, जिन शास्त्र ६, जिनधर्म ७, जिन चैत्य ८, जिन चैत्यालय ९। नित्य पूजा में हम प्रतिदिन इन नव देवताओं की पूजा करते हैं। यद्यपि देव शास्त्र गुरु में शेष छहों देवता गर्भित हो जाते हैं, फिर भी उनकी पृथक्-पृथक् पूजा की जाती है। अरहंत की पूजा में हम द्रव्य अर्पण करते हैं सिद्ध पूजा में द्रव्य अर्पण हो तो बुराई नहीं, किन्तु बिना द्रव्य के भावाष्टक भी चलता है जैसा कि हम आधुनिक पूजाओं में पढ़ते हैं। शास्त्र की पूजा में द्रव्य के साथ-साथ वस्त्र भी हम अर्पण करते हैं। चैत्य पूजा में हम अभिषेक करते हैं, प्रक्षाल भी करते हैं। साक्षात् अरिहंत की पूजा में हम न अभिषेक करते हैं न प्रक्षाल करते हैं। इस प्रकार सभी देवाताओं की पूजा में कुछ न कुछ अन्तर है।

यदि प्रक्षाल या अभिषेक आत्म शुद्धि में कारण नहीं है तब हम पूछना चाहेंगे कि पूजा भी फिर क्यों की जाती है वह भी आत्म शुद्धि में कारण नहीं है। यदि पूजा वन्दना स्तुति से हमें कोई प्रेरणा मिलती है तो अभिषेक से भी हमें प्रेरणा मिलती है। तीर्थङ्कर के अरिहंत हो जाने के बाद देव लोग क्यों छत्र चमर आदि का भगवान् के लिए प्रयोग करते हैं, क्यों ६४ चमर ढोरते हैं क्या उससे आत्म शुद्धि की प्रेरणा मिलती है ? तो भक्त को भी अरिहंत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिमा पर कलश ढोरने से आत्म शुद्धि की प्रेरणा मिलती है। भगवान् ने दीक्षा लेने के साथ ही घर-बार छोड़ दिया तो उनके लिए इतना बड़ा समवशरण, गंधकुटी आदि बनाने की देवों को क्या आवश्यकता है ? इसी तरह गृहस्थ लोग भी भगवान के लिए इतना बड़ा मंदिर, जिसके बनवाने में न जाने कितनी आरम्भ जनित हिंसा होती है, क्यों बनाते हैं ? जबकि भगवान् तो दीक्षा लेने के साथ ही घर-मकान का परित्याग कर वनों में चले जाते हैं। आश्चर्य है कि गृहस्थ को भगवान् के अभिषेक के लिये निषेध किया जाता है, क्योंकि भगवान् ने दीक्षा लेने के साथ ही स्नान आदि का त्याग कर दिया। किन्तु भगवान् का मंदिर बनवाने का निषेध नहीं किया जाता जबकि भगवान् तो अपना शरीर आदि भी छोड़कर निर्वाण पहुँच जाते हैं और हम प्रतिमा बनाकर उनका मूर्त रूप फिर खड़ा कर देते हैं। जिस मूर्त रूप के बनाने में भी आरम्भ जनित हिंसा होती है। यदि ये सब गृहस्थ के लिए वैध है और उससे हमें कुछ प्रेरणा मिलती तो अभिषेक भी वैद्य है और उससे हमें आत्म शुद्धि की प्रेरणा भी मिलती है।

हम पहले लिख चुके हैं कि अरहंत की प्रतिमा और साक्षात् अरहंत इन दोनों में अन्तर है, इसलिए यह तर्क गलत है कि अरहंत वीतरागी हैं उनकी वीतरागी प्रतिमा का अभिषेक नहीं होना चाहिये।

अरहंत प्रतिमा का अभिषेक जैनधर्म सम्मत है

जैनधर्म में अरहंत प्रतिमा का अभिषेक तब से है जब से जैनधर्म है। यदि जैनधर्म अनादि है तो अरहंत प्रतिमा का अभिषेक भी अनादि काल से ही है। परन्तु कुछ लोग इस तथ्य को स्वीकार न कर अपनी पंडिताई के आधार पर जिसका अभिप्राय इतना ही है कि हम भी कोई नई बात निकालें। आज अरहंत प्रतिमा के अभिषेक का निषेध कर रहे हैं। इस निषेध में उनकी दलील भी बड़ी अजीबोगरीब है। उनका कहना है कि प्रतिमा पर रजकण लग जाना स्वाभाविक है अत: उसकी स्वच्छता के लिये प्रक्षाल करना श्रावक के स्तवन-वंदन का ही प्रथम कार्य बना दिया गया। रजकण तो साक्षात् साधु परमेष्ठी के शरीर पर भी लग जाती, बल्कि पसीने को लेकर वे शरीर का मैल बनकर जम भी जाती है तब क्या साधु के शरीर का भी प्रक्षाल कर देना चाहिए ? यदि कहा जाय कि प्रतिमा पर पानी डालने की बात तो बाद में चल पड़ी है पहले तो उसे वस्त्र से ही झाड़ दिया जाता था। इस पर हमारा कहना है कि यदि वस्त्र से प्रतिमा का मैल हटाया जा सकता है, तो अकलंक के साधारण सा धागा डालने से प्रतिमा भी सरागी हो सकती है, तो अनेक धागों के समूह वाले वस्त्र से प्रतिमा तो और भी सरागी हो जाएगी। ऐसी स्थिति में प्रतिमा का वस्त्र से पोंछना भी उपयुक्त नहीं बैठता । तब तो यों कहना चाहिए कि प्रतिमा का न प्रक्षाल किया जाय न उसे पोंछा जाय मात्र उसे काँच के अन्दर बन्द करके रख देना चाहिए। जहाँ तक स्तुति वन्दना करने की बात है आखिर वह भी क्यों करना चाहिए ?

एक ओर तो इन लोगों का कहना है कि जगत् का प्रत्येक पदार्थ पूर्ण स्वतन्त्र है। प्रत्येक द्रव्य की स्वतन्त्रता जैन दर्शन की अपनी मूलभूत विशेषता है और दूसरी ओर कहा है प्रारम्भिक अवस्था में पंच परमेष्ठी की स्तुति-वन्दन करना मुनि और श्रावक का आवश्यक कर्त्तव्य है। आखिर पंचपरमेष्ठी और उनकी मूर्ति भी पर पदार्थ ही हैं उनकी स्तुति वंदना आदि भक्ति रूप परिणामों से भक्त का आत्म कल्याण हो सकता है तो, मूर्ति के अभिषेक प्रक्षाल आदि से भक्त का कल्याण क्यों नहीं हो सकता ? इसमें शास्त्र विरुद्धता क्या है इसकी दलील सामने आनी चाहिए।

प्रक्षाल का उद्देश्य प्रतिमा पर लगे हुये रजकणों का हटाना है इसका आगम प्रमाण भी इन पण्डितों को पेश करना चाहिए। बिना आगम प्रमाण के अपनी इच्छानुसार कुछ भी लिख देना मात्र जिह्वा की कसरत है सार कुछ भी नहीं है। जबकि अभिषेक के प्रमाण, अभिषेक की विधि, अभिषेक में बोले जाने वाले मंत्र विविध ग्रन्थों में मौजूद हैं।

कोई भी लेखक जो अपनी रचना बनाता है उसके मूल में उसके अपने कुछ उसूल कुछ सामयिक परिस्थितियाँ होती हैं उन्हीं में वह अपनी रचना ढालता है अत: हर रचनाकार से अपने मान्य अभीष्ट तत्त्वों के उल्लेख की आशा करना अज्ञानता है।

अभिषेक का निषेध करने वाले इन पण्डितों की दो ही दलील मुख्य हैं एक तो यह है कि प्राचीन आचार्यों के ग्रन्थों में अभिषेक की चर्चा नहीं है तथा जिन ग्रन्थों में अभिषेक की चर्चा पायी जाती है वे उनके मत में या तो प्रामाणिक आचार्य नहीं हैं अथवा यह समय का प्रभाव था जिससे जैनाचार्य प्रभावित हुए और उन्होंने देखादेखी अभिषेक आदि की प्रथा चला दी। अपनी इन्हीं युक्तियों के आधार पर वे चंदन चर्चा, नैवेद्य, पुष्प आदि चढ़ाने का निषेध करते और उसे सनातन धर्म की नकल मानते हैं। लेकिन इससे वास्तविकता का खण्डन नहीं होता। दूसरा भी कह सकता है कि जैनों की वर्ण व्यवस्था की नकल सनातन धर्मियों ने की है जैसाकि आर्य समाज के विद्वान् कहा करते हैं कि वैदिक धर्म में मूर्ति पूजा का होना जैनों की नकल है अर्थात् जैनों से ही यह मूर्ति पूजा वैष्णवों से आई है, पहले नहीं थी। अत: किसने किसकी नकल की है इसके लिए हमें ठोस ऐतिहासिक प्रमाण ढूँढ़ने होंगे। कौन सम्प्रदाय पहले था कौन बाद में हुआ।

अभी तक इन पण्डितों को यह भी पता नहीं है कि प्रक्षाल का क्या अर्थ है और अभिषेक का क्या अर्थ है। इन दोनों को वे एकार्थक समझते हैं जबकि दोनों के प्रयोग में जमीन आसमान का अन्तर है। जैन शास्त्रों में तो अभिषेक के बिना प्रतिमा पूजा नहीं बताई है। इसलिए अभिषेक करना पूजा का अंग है। इतना ही नहीं बल्कि इससे अशुभ कर्मों की असंख्यातगुणी प्रतिसमय निर्जरा भी होती है। यदि पूजा करना भक्ति का प्रारूप है तो अभिषेक भी उसीतरह भक्ति का प्रारूप है। यदि अभिषेक उचित नहीं है तब तो द्रव्य पूजा भी उचित नहीं।

अभिनन्दन ग्रन्थ से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन्तान-संहार का सूतक

ब्र. शान्तिकुमार जैन

सिद्धान्त शास्त्र एवं आगम में कहीं भी गर्भस्थ शिशु की हत्या कराने वाले को कितने समय का सूतक लगेगा इसका कोई विधान नहीं मिलता। दिगम्बर जैन धर्म की आधार शिला अहिंसा परमो धर्म है। अत: आचार्यों ने ऐसा सोचा ही नहीं था कि जैन धर्मावलम्बी ऐसा भी घृणित जघन्य क्रूर अमानवीय क्रिया कर सकता है।

आचार्य महाराज, आर्यिका माताजी, विद्वान एवं विदुषी श्रावक श्राविकायें इस बात पर विचार करें कि ऐसे निर्मम हत्यारे पति-पत्नि को सूतक-पातक कितने दिन का लगना चाहिये। अपनी विवेक बुद्धि से निर्णय करके अपने शिष्यों को बताना चाहिये। आधार के लिए प्रायश्चित्त शास्त्र एवं मूलाचार ग्रन्थों का आलोड़न करना चाहिये। वर्तमान परिस्थिति में इस कुकृत्य पर शीघ्रातिशीघ्र यथा सम्भव अकुंश लगाना अत्यावश्यक है। भय के द्वारा ही बुरी आदतें भी सुधर सकती हैं। इस विषय में निषेध हेतु कुछ नहीं कहना भी वस्तुत: परोक्ष मौन समर्थन ही समझा जाता है। समाज में नए वर्ग के लोग इस खोटे काम को सहज रूप से करने लग गये हैं।

इस कुरीति के भविष्य में होने वाले दुष्प्रभाव को विचार करें तो जैनियों की संख्या घटती जायेगी, सज्जाति में विवाह योग्य वर कन्या मिलना दुर्लभ होता जायेगा, अन्य जातियों में सम्बन्ध स्वयं लड़के लड़कियाँ करने लग जायेंगे, माता-पिता की आज्ञा एवं जानकारी के बिना ही। बे मेल विवाह के कारण वह दम्पति एवं उनकी सन्तान सन्तति की परम्परा ही अजैन हो जाती है। इस प्रकार विजातिय विवाह सम्बन्ध से आने वाले १८४०० वर्षों में होने वाली सन्तान में कम से कम एक लाख जैन अजैन हो जायेंगे। समाज की संस्कृति संस्कार ही बिगड़ता चला जायेगा। मंदिर, भगवान, तीर्थ आदि धर्मायतन अजैनों के अधिकार में चले जायेंगे। यह एक अत्यन्त शोचनीय चिन्तनीय विषय है। बिलम्ब के कारण इस कुकर्म के कीटाणु कैंसर की तरह बढ़ते ही जायेंगे। कालान्तर में यह एक लाइलाज समस्या बन जायेगी।

सूतक के विषय में अब व्यक्तिगत चिन्तन प्रस्तुत किया जाता है। मनीषी जन गम्भीरता से विचार करें। आत्महत्या करने वाले के परिवार वालों को ६ माह का सूतक लगने की मान्यता है। अपनी सन्तान को पेट में अत्यन्त असहाय एवं शैशव अवस्था में टुकड़े टुकड़े कर के काट-काट कर मार डालना एक अत्यन्त घृणित कार्य है। इस दुष्कृत्य से कभी कभी उस माँ का ही मरण हो जाता है अथवा दुसाध्य रोग लग जाता है। ऐसी घटनायें भी ज्ञात हुई हैं कि विवाह के पश्चात् शीघ्र आने वाली प्रथम सन्तान का गर्भपात करा दिया तो भविष्य में वह महिला नि:सन्तान ही रह गई। माता-पिता दोनों को नपुंसकता का अशुभ कर्म का बंध होता है। माता बंध्या होती है। अगला भव नरक तिर्यंच गति का ही मिलता है।

गर्भपात कराने वाले पति-पत्नि को कमसे कम एक वर्ष का सूतक तो लगना ही चाहिये। अथवा दिगम्बर जैन आचार्य महाराज से प्रायश्चित लेकर जीवन में पूरा उतार लें तब तक का सूतक दोनों को लगना चाहिये। उतने समय तक के लिए उनका लोक व्यवहार एवं सामाजिक व धार्मिक व्यवहार समाज की मान्यता, रीति-रिवाज, जनपद सत्य के अनुसार प्रतिबंधित होना चाहिये। दुबारा कराया जाय तो सूतक की अवधि तीन या पाँच वर्ष की होनी चाहिये। तीसरी बार कराया जाय तो उन दोनों को जीवन पर्यन्त का सूतक लगना चाहिये उपरोक्त प्रायश्चित विधि से शुद्धिकरण करा लेने पर निर्दोष हो सकते हैं।

गर्भपात कराना एक ऐसा गुप्त कार्य है कि गृहस्थ, परिवार, परिजन को कुछ भी ज्ञात नहीं हो पाता है। यह सूतक अन्य किसी को भी नहीं लगेगा। मात्र पति-पत्नि को ही लगेगा। किसी को ज्ञात हो या नहीं भी हो परन्तु पाप का बंध तो होगा ही होगा एवं उसका तीव्र अशुभ फल भी भोगना ही पड़ेगा। इसलिए अपनी सूतक की अशुद्धि मानकर प्रायश्चित के द्वारा शुद्धिकरण करा लेना एवं उस अवधि में अपनी क्रियाओं को स्वयं ही विवेक ज्ञान से प्रतिबंधित रखना अनिवार्य समझना चाहिये। पाप को छिपाना भी और अधिक भयंकर पाप है। गर्भ का ठहर जाना ही एक जीवात्मा का इस भव में जन्म का दिन है। बाद में तो शरीर का निर्माण एवं विकास होता है।

यांत्रिक जाँच प्रक्रिया से गर्भस्थ शिशु का लिंग निर्धारण करना एवं उसका गर्भपात कराना दोनों ही अनैतिक कार्य हैं। जाँच करना एवं कराना भी कानून से दंडनीय अपराध घोषित हो चुका है। पिता-माता को ही सोचना चाहिये कि उनकी माँ उसे गर्भ में मार डालती तो वह आज कहाँ नजर आते। क्या पता गर्भस्थ सन्तान कितना बड़ा पुण्यवान सौभाग्यशाली व्यक्तित्व को लेकर आया है कि उसके द्वारा देश, धर्म, समाज का कोई महान अपूर्व उपकार, विकास, उन्नति का कार्य होने वाला है। क्या पता उस जीवात्मा के आने से उस गरीब, संकट ग्रस्त, दु:खी परिवार का कल्याण हो जायेगा। ऐसा भी देखा गया है कि बेटे तो सारे दु:ख कष्ट देने वाले हो जाते हैं एवं बेटी का दामाद मददगार सेवा उपकार करने वाला पाया जाता है। बेटे आँसू निकालते हैं, बेटियाँ आँसू पोंछती हैं।

आप चाहें तो असमय में आने वाली सन्तान का निरोध अनेक आधुनिक प्रक्रियाओं के द्वारा भी कर सकते हैं। स्त्री रोग चिकित्सकों से पूछकर अपने मासिक धर्म के आवर्त के दिनों पर ब्रह्मचर्य का सहज सरल पालन के द्वारा भी नियंत्रण कर सकते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसमें कोई भी औषधि या प्रक्रिया की आवश्यकता नहीं रहती। गर्भ निरोध की औषधियाँ सेवन करना भी सांघातिक हानिकारक है। शल्यक्रिया के द्वारा सन्तानोत्पत्ति की शक्ति को समाप्त कर देना भी तो अपने आपको बंद्धया बनाना ही है तो फिर अगला भव भी तो वैसा ही प्राप्त होगा। कालान्तर में इसके फलस्वरूप इसी जीवन में अनेक नई-नई आधि-व्याधि भी आ जाती हैं। शरीर की स्वाभाविक गतिविधि पर कुठाराघात ठीक नहीं ।

अनचाही सन्तान आती है तो आने दीजिये। उसे किसी जरूरतमन्द को दे दीजिये अथवा अनेक संस्थायें हैं जो कि ऐसे शिशु को संरक्षण करने के लिए ले लेती हैं एवं नि:सन्तान वालों को गोद भी देती हैं। मासूम शिशु को गर्भ में ही हत्याकर के व्यर्थ का निकाचित महापाप का तीव्र अनुभाग वाला अत्यनत अशुभ पाप का बंध करना कतई उचित नहीं। इसमें सूतक का विधान हो या स्वयं अपने आपको दंड प्रायश्चित देकर शुद्ध करना चाहिये। भविष्य में कभी भी इस कार्य के करने, कराने, अनुमोदना का त्याग का नियम लेना चाहिये।

प्रवचन

मुनि श्री अजितसागर जी एवं ऐलक निर्भयसागर जी के प्रवचनांश

कुण्डलपुर (दमोह), मुनि श्री अजितसागर जी ने कहा कि 'जीवन की घंटी कब बज जाये, यह पता नहीं चलता। उस घंटी को सुनने के लिये हमेशा सचेत रहना चाहिये। साधना करो पर आत्मोपल्धि की। जगत और काय के स्वामी को जानो। शब्द को पढ़ो परंतु जगत की पुस्तक पढ़ो। संसार कुंए में की गई ध्वनि के समान है। जैसी आवाज करोगे वैसी ही प्रतिध्वनि आप को सुनने मिलेगी। आदमी जैसा करता है उसे वैसा ही फल मिलता है। संसारी आत्मा ही परमात्मा बनती है पर आत्मा बनने के लिये परोपकार करना होता है। जैसे कुत्ता काँच के महल में घुसकर भौंकता है तो भौंकते हुए कुत्तों से घिर जाता है और यदि पूंछ हिलाकर बैठ जाता है तो चारों ओर से शांत वातावरण हो जाता है। वैसी ही स्थिति संसारी आदमी की भी है। आहार, भय, मैथुन और परिग्रह ये चार संज्ञाएँ हैं इनका ज्वर चढ़ जाने से कष्ट भोग रहा है। साधु के पास चार संज्ञाएँ नहीं होतीं, वे तप को बढ़ाने आहार करते हैं। पेट को एक गड्ढा मानकर भरते हैं, स्वाद के लिये भोजन नहीं करते। दिशा बदलो तो दशा बदल जायेगी। संसार की ओर नहीं परमात्मा की ओर दिशा बना करके चलो। अपनी छाया पकड़ में नहीं आती यदि सूरज की ओर मुख करके चलोगे तो वह छाया आपके पीछे चली आती है।' कुण्डलपुर में मुनि श्री निर्णयसागर जी, मुनि श्री अजितसागर जी एवं ऐलक श्री निर्भयसागर जी एक माह से विराजमान हैं। प्रत्येक रविवार को प्रवचन होते हैं। नए वर्ष की प्रात:कालीन शुभ बेला में मस्तकाभिषेक होना है। **ऐलक श्री निर्भयसागर जी** महाराज ने कहा- 'मुस्कान से मुख खिलता है। सद व्यवहार से सम्मान मिलता है। अध्ययन करने से ज्ञान मिलता है। परिग्रह त्याग कर ध्यान से मोक्ष मिलता है। मोक्ष पुरुषार्थी भक्ति करता है। भक्ति सम्यक् प्रकार से की जाती है। भक्ति मन, वचन, काय में सरलता, विनय और सत्यता से सहित होकर की जाती है। विनय मोक्ष का द्वार है। विनय से जब मोक्ष मिल सकता है तब संसार की वस्तु क्यों नहीं मिल सकती है।'

ऐलक श्री निर्भय सागर जी ने कहा 'भोगों को भोग कर शरीर नष्ट कर रहा है। योग में नहीं लगा रहा है। भोग से अशांति और योग से शांति मिलती है। तृष्णा से ताप मिलता है, इसलिये तृष्णा को कम करना चाहिये। तृष्णा की खाई कभी भरती नहीं है। तृष्णा एक नागिन है जो हमेशा डंक मारकर आदमी को वेहोश कर रही है। शरीर जीर्ण हो गया पर तृष्णा जीर्ण नहीं हो रही हो, तो कुछ नहीं समझा, जीवन व्यर्थ है। तपों को तपने से मानव की आत्मा शुद्ध होती है। तप में थोड़ा ताप यानि कष्ट होता है परंतु अनंतकाल के लिये कष्ट नष्ट हो जाता है। आदमी तपों को नहीं तप रहा है स्वयं ताप में जल कर राख हो रहा है। यही अज्ञानता है। काल के गाल में समा रहा है। आदमी काल को टी.वी. की शरण लेकर काट रहा है। काल कटता नहीं काल का सदुपयोग करना सीखना चाहिये। काल का सदुपयोग दान सेवा भक्ति ध्यान परोपकार ज्ञानोपार्जन आदि करने से होता है। सच्चा विवेकी आदमी सेवा दान भक्ति के लिये ऐसा भागता है जैसे फोन की घंटी सुनकर एक आदमी भागता है। विद्यार्थी अपनी क्लास से भागता है। यात्री स्टेशन पर घंटी सुनकर तैयार हो जाता है, ट्रेन में चढ़ने के लिये। बड़े बाबा का अभिषेक एक जनवरी को होना है। अत: अभिषेक की घंटी सुनकर आप सब को आना होगा। सच्चे भक्त तभी कहे जाओगे जब फोन की घंटी के समान भक्ति की घंटी सुनकर आओ।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभिनन्दनीय का अभिनन्दन

रतनचन्द्र जैन, 'जिनभाषित'-सम्पादक

दिनांक २५ दिसम्बर २००३ को कोलकाता में भारतवर्षीय दि. जैन (धर्म संरक्षिणी) महासभा की पश्चिम बंगाल शाखा के द्वारा भारत के प्रसिद्ध विद्वान् प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी जैन का भव्य अभिनन्दन किया गया। यह एक यथार्थतः अभिनन्दनीय पुरुष का अभिनन्दन था।

प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी जैन वह नाम है, जो विगत अर्धशताब्दी से प्रभावशाली वक्तृत्व-शैली, मार्मिक लेखन और अगाध विद्वत्ता का पर्याय बना हुआ है।

व्यवसाय की दृष्टि से वे शिक्षक रह चुके हैं। उनकी शिक्षणकला किस कोटि की रही होगी, इसका परिचय उनकी ज्ञानगम्भीर, तर्कणापूर्ण, हृदयग्राही, काव्यात्मक वाग्मिता दे देती है। जैन विद्वानों की प्राचीन संस्था अखिल भारतीय शास्त्रिपरिषद् ने एक दशक से अपनी बागडोर उनके हाथों में सौंप रखी है, जिससे लोगों को उनके नेतृत्व-नैपुण्य का सुखद साक्षात्कार हो रहा है। और ' जैनगजट' जैसे प्राचीन और प्रतिष्ठित पत्र के सम्पादकत्व ने उनकी जैन धर्म और दर्शन की गहन समझ तथा धार्मिक-सामाजिक समस्याओं के समाधान की दिशा में कुशल मार्गदर्शन करने की अद्भुत प्रज्ञा का उद्घाटन किया है।

प्राचार्य जी के प्रवचन और व्याख्यान जितने उद्बोधक होते हैं, उतनी ही प्रतिबोधकता उनके सम्पादकीय लेखों एवं शोध आलेखों में विद्यमान होती है। 'जैन गजट' में लिखे गये उनके सम्पादकीय लेखों और संगोष्ठियों में पठित शोधनिबन्धों के दो संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, जिनके नाम हैं : 'चिन्तन प्रवाह' और 'समय के शिलालेख।' इनमें संगृहीत आलेखों में प्राचार्य जी ने जैन धर्म और समाज से सम्बन्धित बहुमुखी विषयों का विवेचन किया है। किन्तु उनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं वे आलेख जिनमें उन्होंने पन्थ, जाति, शासन देवी-देवता, भट्टारक-परम्परा, निश्चयाभास, शिथिलाचार आदि वर्तमान में विवाद के हेतु बने हुए विषयों का तर्कसंगत विश्लेषण करते हुए उनके समाधान हेतु औचित्यपूर्ण उपाय सुझाये हैं। वर्तमान में कुछ जैन साधु ऐसे हैं, जो मन्त्रतन्त्र का चमत्कार दिखलाकर अपने भक्तों की संख्या बढ़ाने की कोशिश करते हैं। प्राचार्य जी ने इसे मुनिधर्म के विरुद्ध बतलाया है। बहुत से श्रावक शासन देवी-देवताओं की तीर्थंकरों के समान पूजा करते हैं और कुछ मुनिजन इसकी प्रेरणा देते हैं। प्राचार्य जी ने इसे मिथ्यात्व निरूपित करते हुए शासनदेवताओं को केवल साधर्मी बन्धुओं के समान सम्मान देने को ही उचित कहा है।

'नग्नमुनि एवं भट्टारक' लेख में अतिशय क्षेत्र लूणवाँ में घटित घटना का प्रसंग उपस्थित करते हुए प्राचार्य जी लिखते हैं, 'किसी नग्नमुनि का भट्टारक बनना ऐसे ही है, जैसे किसी गृहत्यागी विरक्त (अनगार) का फिर से संसार में प्रवेश करना' (समय के शिलालेख, पृष्ठ ११०)। मेरा ख्याल है कि दिगम्बर जैन मुनि के समान पिच्छी-कमण्डलु ग्रहण करते हुए अजैन साधुओं के समान गेरुए वस्त्र धारण करने वाले भट्टारकों के विषय में भी प्राचार्य जी की यही मान्यता होगी। तेरापन्थ और बीसपन्थ के विवाद की जिनशासन और जैन समाज के लिए अहितकर मानते हुए प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जी अपना मत निवेदित करते हैं- 'तेरापन्थ और बीसपन्थ ये काल्पनिक नाम हैं। हमारे पूर्वाचार्यों ने आगम ग्रन्थों में कहीं इन शब्दों का प्रयोग नहीं किया' (समय के शिलालेख, पृष्ठ १०६)। हम स्वयं व्यक्तिरूप से तेरापन्थ को पसन्द करते हैं, फिर भी बीसपन्थ से हमें कोई एलर्जी नहीं है' (वही, पृष्ठ १०९)।

प्राचार्य जी के ये विचार मुझे जिनशासन के अनवरत प्रवर्तन तथा जैन समाज की एकता को अक्षुण्ण रखने के लिए अत्यन्त युक्तियुक्त प्रतीत होते हैं। मेरी मंगल कामना है कि स्वनामधन्य प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी 'जीवेत् शरदः शतम,' ताकि शास्त्री परिषद् उनके नेतृत्व से, 'जैन गजट' उनके सम्पादकत्व से तथा जैन समाज उनके प्रबोधक उपदेश एवं मार्गदर्शन से आकाश की और अधिक ऊँचाइयों का स्पर्श करने में समर्थ हो।

मुक्तक

योगेन्द्र दिवाकर

विष भी अमृत का पान बन सकता है,
रोदन भी मधुरिम गान बन सकता है।
साहस के साथ अगर करे सामना तो,
अभिशाप भी वरदान बन सकता है॥

अवसर का चित्र खींचो, अवसरवादी मत बनो,
गुलामी की भावना के आदी मत बनो।
प्रभुत्व और नेतृत्व सब किस्मत की कृपायें हैं,
इनको पाकर कभी भी उन्मादी मत बनो॥

पुष्पराज कॉलोनी, प्रथम पंक्ति
सतना (म.प्र.) 485 001

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थ : स्वतंत्रता संग्राम में जैन (प्रथम खण्ड)

लेखक : डॉ. कपूरचन्द्र जैन एवं डॉ. श्रीमती ज्योति जैन

भारत के सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनैतिक विकास में जैन समाज का महनीय योगदान है। भारत की आजादी के आन्दोलन में भी इस समाज के लोगों ने अपना बलिदान देकर, जेलों में रहकर तथा आर्थिक आदि अन्य प्रकार से जो योगदान दिया था, वह एक मिसाल है। लगभग पाँच हजार जैनों ने जेल यात्रा कर आजादी का मार्ग प्रशस्त किया था। १८५७ में लाला हुकुमचन्द जैन और अमरचन्द बांठिया को तथा १९३० में मोतीचन्द शाह को फांसी पर लटका दिया गया था। १९४२ में उदयचंद जैन, जयावती संघवी, नत्थालाल शाह, सिंघई प्रेमचन्द जैन, साबूलाल वैसाखिया, मगनलाल ओसवाल, अण्णा पत्रावले, कन्धीलाल जैन आदि को गोलियों से भून दिया गया था।

इतना होने पर भी स्वतंत्रता संग्राम में जैन समाज के योगदान की चर्चा तक नहीं होती थी, जबकि सरकार के अभिलेखों में यह सब दर्ज है। अनेक जैन संस्थाओं ने इस प्रकार के प्रस्ताव भी पास किये थे, पर प्रस्ताव ही रहे। प्रसन्नता का विषय है कि जैन दर्शन के सुप्रसिद्ध विद्वान् अनेक पुस्तकों के लेखक डॉ. कपूर चन्द जैन, अध्यक्ष संस्कृत विभाग, श्री कुन्दकुन्द जैन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खतौली-२५१ २०१ (उ.प्र.) फोन: ०१३९६ - २७३३३९ तथा उनकी धर्मपत्नी 'संस्कार सागर' तथा 'जैन संदेश' की सह सम्पादिका डॉ. श्रीमती ज्योति जैन ने यह बीड़ा उठाया और लगभग १० वर्षों के परिश्रम एवं बहु अर्थ व्यय कर 'स्वतंत्रता संग्राम में जैन' (प्रथम खण्ड) ग्रन्थ का लेखन किया है। इस दम्पति के लेखन की प्रामाणिकता सुविदित है। पहले भी 'शोध सन्दर्भ' जैसी चुनौती पूर्ण पुस्तकों का संकलन/सम्पादन डॉ. जैन कर चुके हैं। इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ को तैयार करने में लेखक दम्पति को जहाँ सन्त शिरोमणि आचार्य विद्यासागर जी महाराज का आशीर्वाद और प्रेरणा मिली है वहीं प्रकाशन में उपाध्यायरत्न ज्ञानसागर जी महाराज का आशीर्वाद मिला है। ग्रन्थ का प्रकाशन 'प्राच्य श्रमण भारती' मुजफ्फरनगर ने किया है।

20X30/8 (स्मारिका साइज) के लगभग ५०० पृष्ठों में समाहित इस पुस्तक में ४८ बड़े दुर्लभ चित्रों के साथ १९५ पासपोर्ट साइज के चित्र हैं। पूरी पुस्तक आर्ट पेपर पर छापी गई है। मूल्य भी अत्यल्प मात्र २००/- है। पुस्तक-प्राच्य श्रमण भारती, १२/ए, निकट जैन मंदिर, प्रेमपुरी, मुजफ्फरनगर - २५१ ००१ (उ.प्र.) फोन : ०१३१-२४५०२२८ तथा श्रुत संवर्धन संस्थान, प्रथम तल, २४७-दिल्ली रोड, मेरठ २५० ००२ फोन: ०१२१-२५२७६६५ से प्राप्त की जा सकती है। साहित्य सदन, श्री दि. जैन लाल मंदिर, चांदनी चौक, दिल्ली, फोन : २३२८०९४२, २३२५३६३८ से भी प्राप्त कराने की व्यवस्था की जा रही है।

आरम्भ में 'बोलते शब्द चित्र' नाम से एक विस्तृत भूमिका दी गई है जिसमें १८५७ तक के प्रमुख जैन राजाओं, मंत्रियों, दीवानों, सेनापतियों, कोषाध्यक्षों आदि का परिचय है। उपक्रम चार में २० जैन शहीदों का परिचय है तथा उपक्रम पांच में उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश एवं राजस्थान के लगभग ६५० जैन जेल यात्रियों का परिचय है। परिशिष्टों में जहाँ संविधान सभा में जैन, आजाद हिन्द फौज में जैन, एक जब्तशुदा लेख आदि की जानकारी दी गई है वहीं फिलरों में राष्ट्रगान में जैन, भारतीय संविधान में जीव दया आदि के साथ राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, पं. जवाहरलाल नेहरू, राजीव गांधी आदि के अहिंसा के सम्बन्ध में विचार दिये गये हैं। अन्त में ग्रन्थ तैयार करने में आधारभूत २१७ ग्रन्थों आदि की सूची दी गई है। यह प्रथम खण्ड है, जैसी की लेखक दम्पति की योजना है, यदि इसके दो और खण्ड निकल गये तो यह बहुत बड़ी उपलिब्ध होगी।

इसके अतिरिक्त ग्रन्थ में उल्लिखित कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ हैं- शहीद मोतीचंद ने जेल में खून से पत्र लिखा था। क्रान्तिकारी अर्जुनलाल सेठी जिन-मूर्ति का दर्शन न मिलने से बेलूर जेल में ५६ दिन निराहार रहे। श्री कुसुमकान्त जैन संविधान सभा में सबसे कम उम्र के सदस्य थे। कर्नल राजमल कासलीवाल नेताजी सुभाषचंद बोस के निजी चिकित्सक रहे थे। पं. फूलचन्द सिद्धान्त शास्त्री डॉ. अम्बेडकर से मिले थे। श्री रतन लाल मालवीय दीपावली के दिन संविधान की पूजा करते थे। श्री छोटेलाल जैन के निधन पर पूज्य बापू ने सम्पादकीय लिखा था। मध्यभारत के मुख्यमंत्री श्री मिश्रीलाल गंगवाल ने राजकीय अतिथि को मांसाहार कराने से पं. जवाहरलाल नेहरू को मना कर दिया था। अनेक जैन सेनानियों ने सरकारी पेंशन, जमीन, रेलपास आदि लेने से मना कर दिया। सेठ अचल सिंह ने जेल में 'मेरा जैनाभ्यास' वृहद् पुस्तक लिखी थी, श्री ज्योति प्रसाद देवबन्द, श्री कल्याण कुमार शशि, श्री श्यामलाल पाण्डवीय आदि की रचनाएँ जब्त कर ली गई थीं।

लेखक दम्पत्ति ने जिस अध्यवसाय, लगन और प्रामाणिकता के साथ इसे तैयार किया है, इस रूप में इसका प्रचार-प्रसार होना ही चाहिए। समाज के श्रेष्ठियों/पाठकों का कर्त्तव्य है कि अपने क्षेत्र के विश्वविद्यालय, महाविद्यालय के पुस्तकालयों व नगर के सार्वजनिक पुस्तकालयों में इसकी प्रति भिजवायें। अपने शहर में इतिहास-राजनीति शास्त्र के जो प्रोफेसर हों उनको इस पुस्तक के संदर्भ में अवश्य बतायें। अपने क्षेत्र के केन्द्रीय या राज्य के मंत्रियों/संसद सदस्यों/विधायकों को इसकी प्रतियाँ भेंट करें। स्वतंत्रता सेनानियों के परिवारों को इसकी जानकारी दें। मंदिरों, पाठशालाओं में इस पत्र की फोटो कापी लगायें। सम्पादकों व विद्वानों के लिए भी प्रति उपयोगी है।

डॉ. जयकुमार जैन
महामंत्री - अ.भा.दि.जैन शास्त्री परिषद्
२६१/१, पटेल नगर, मुजफ्फरनगर, २५१ ००१ (उ.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिरि भूवलय की रहस्यमय अभिव्यक्ति

डॉ. स्नेहरानी जैन एवं जिनेन्द्र कुमार

आचार्य कुमुदेन्दु द्वारा रचित ग्रंथ 'सिरिभूवलय' (सर्वार्थ सिद्धि संघ, बेंगलोर, सं. २०१४ वीर निर्वाण संवत् २४८४) एक ऐसी कृति है जो हड़प्पा संस्कृति के कुछ रहस्यमय प्रमाण प्रस्तुत करती है। सैंधव लिपि जो संकेत और चित्र चिन्हों के रूप में पुरा सामग्री पर अंकित प्राप्त हुई है, उसे विश्व के विद्वानों की भारी भीड़ लगभग पूरी शती लगाने के बाद भी संतुष्टि प्राप्त करते हुए नहीं पढ़ सकी है। उस पुरा लिपि को पढ़े जाने की घोषणा करने वाले विद्वान उस लिपि को ना पढ़ते हुए नई-नई भाषाएँ ईज़ाद करते रह गये हैं। फलस्वरूप एक ही संकेत/चित्र को सभी अपनी-अपनी दृष्टि से अलग-अलग पढ़ते रहे हैं। इसी कारण सर्वसहमति बिना उन्हें असंतुष्टि बनी रहीऔर उन्हें मान्यता भी नहीं मिली।

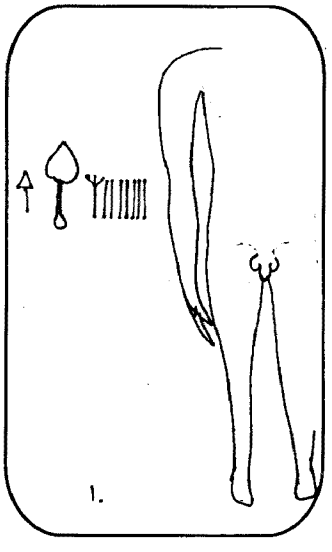

जिस समय हड़प्पा और मोहन जोदड़ो की खुदाई से पुरा संपदा प्राप्त हुई उस समय अत्यंत उत्साह से उस सभ्यता के प्राप्त प्रमाणों को सहेजते हुए यही कल्पना की गई कि 'भारत की वह मूल, अत्यंत उन्नत परंपरा मात्र ३०० वर्ष रही और बाद में क्रूर आक्रामकों द्वारा (मूल निवासी) उन निहत्थों का नामो निशान ही इस धरा से खत्म कर दिया गया जिससे उस सभ्यता का समूल अंत हो गया'। पाकिस्तान बनाए जाने के बाद वह क्षेत्र भारत का हिस्सा ना रहा। उस संस्कृति की खोज आसपास करते हुए प्रथम तो पंजाब में फिर राजस्थान और कच्छ तथा गुजरात में उत्खनन हुए और इस प्रकार कालीबंगा, राखीगढ़ी, सिसवाल, धोलावीरा, लोथल, तेलोह, बनावली आदि अनेक स्थान उस संस्कृति की हूबहू झलक लेकर सामने आए। तब कहीं स्पष्ट हुआ कि वह संस्कृति मात्र सिंध में ही नहीं संपूर्ण नर्मदा और गंगा के बीच के मैदान में व्याप्त संस्कृति थी जो कृषि, कला, औजार, पशुपालन, भवन निर्माण आदि में उन्नत होते हुए लेखन, व्यापार, वाणिज्य और ज्ञान तथा अध्यात्म में भी अति उन्नत थी। उस संस्कृति का अध्ययन और उससे निकाले गए निष्कर्षों में धुंधली सी 'आर्य और द्रविड़' भेद की झलक थी। जबकि वह संस्कृति 'भरत क्षेत्र के आर्यखण्ड के भारत वर्ष क्षेत्र की पुरातन निधि'थी। इससे इतना तो स्पष्ट हो जाता था कि आर्य बाहर से आए नहीं थे बल्कि आर्य खंड के मूलनिवासी थे। तब द्रविड़ कौन हुए? अत्यंत प्राचीन इतिहास हमें कथारूप में रामायण तथा महाभारत में मिलता है। प्राचीन भारत की झांकी मौर्य वंश काल से मिलना प्रारंभ होती है। उससे पूर्व-काल का इतिहास हमें वेदों, उपनिषदों, ब्राह्मणों तथा संहिताओं से ही मिल पाता है। इनमें इतिहास ढूँढ़ने पर शबरी, निषाद, सुग्रीव, नील के रूप में दिखता है। रामायण में राम की खड़ाऊँ और हृदयांकित चरण चिन्ह के रूप में मिलता है जो मात्र 'संकेत' हैं। उत्तर कालीन डायरियों में मेगस्थनीज ने अपना स्थान बनाया है जो जिनश्रमणों से संबंधित कुछ जानकारी जुटाती है। किंतु पाषाणों पर अंकित शिलालेख, मूर्तियाँ और चट्टानों के हृदय पर लिखी चित्रांकित कथाएँ, गुफाओं के लेख पुरा इतिहास के जीवंत साक्षी हैं।

इन सभी से इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि भारत में भी कोल, भील,चोल जातियाँ आदिवासियों के रूप में सम्मान सहित रहती थीं और भारत में काले गोरे का सतही भेद कभी भी नहीं रहा, क्योंकि राम तथा कृष्ण दोनों ही सांवले थे। इनकी पत्नियाँ अतीव सुन्दरियाँ थीं और इन्हें इनके वर्ण के कारण कभी भी तिरस्कृत नहीं किया गया।

रामायण की कथा ने विश्व में सर्वाधिक प्रसार पाया। जिस भी भूभाग में वह गई वहीं के परिवेश में उसे मान्यता मिली। किंतु भारत में भी उसके अवशेष पुरा-प्रतीकों में झलकना चाहिए थे सो हड़प्पा और मोहनजोदड़ो में उसके प्रतीक नहीं झलके। इसका एक ही कारण संभव लगता है कि 'त्रेताकाल' की वह घटना सैंधव संस्कृति से उत्तर कालीन ही रही हो। जैन धर्म की साहित्य प्रमाण कड़ी में उसे बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रत काल का होना आंका गया है। उन्हीं मुनिसुव्रत भगवान की एक मूर्ति आज भी पैठण नामक जैन तीर्थ (महाराष्ट्र) में अवस्थित है जिसके बारे में यह मान्यता है कि उसे रामचन्द्र जी ने सीता, लक्ष्मण सहित अपने वनवास काल में पूजा है। संपूर्ण रामायण के अध्ययन से यह ज्ञात नहीं हो पाता है कि उस काल में लिपियाँ थीं या नहीं किंतु पूजन, हवन के विषय में अवश्य जानकारी मिलती है।

(पृ.१७१अ.१०) सिरिभूवलय ग्रंथ में ''ऊँ'' का महत्व ओंकार के रहस्य रूप में दर्शाया गया है कि 'ऊँकार के द्वारा आए हुए सभी शब्दागम के अक्षर-अंक सर्वत्र, संपूर्ण शंकाओं का परिहार करने वाले शंका दोष रहित अंक हैं।' ये अंक १ से ६४ हैं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो क्रमवार प्राकृत के स्वरों और वर्णाक्षरों के समान हैं। डॉ. श्री महेन्द्र कुमार मनुज ने इस ग्रंथ के अंतिम (अंक) चक्रबंध को पढ़ने में सफलता भी पाई है और अति उत्साह जनक सामग्री भी प्रस्तुत की है।

सैंधव प्रतीकों में ॐ तीन रूपों में स्पष्ट झलका है। एक सील में सिर की पूंछ वाला और दो में नीचे पूंछ वाला। हमारा वर्तमान ॐ अंकन मध्यम पूंछ वाला इन्हीं दोनों से उपजी अभिव्यक्ति प्रतीत होता है।

यह शीर्ष से लटकता ॐ अनेक प्राचीन जिन बिंबों के पाद पीठों पर अंकित मंत्रों में भी झलकता है। इससे इतना तो अवश्य ही प्रमाणित होता है कि आज जानी जाने वाली देवनागरी उस प्राचीन पुरा काल में भी प्रचलित थी। तब सैंधव मनीषियों ने संकेत और चित्र लिपि का आश्रय क्यों लिया? उत्तर में मात्र यही स्पष्ट लगता है कि 'चित्र तथा संकेत' प्रत्येक भाषा का जानकार और 'अनक्षरकार' समझ सकता है जबकि लिपि साक्षर व्यक्ति ही कदाचित! अतः चित्र और संकेत लिपि का आश्रय लेकर उन मनीषियों ने अपनी गहरी समझ और दूरदृष्टि का परिचय दिया है। वह लिपि भारत में जहाँ-तहाँ उत्खननों द्वारा सामने आई है और संभवतः आसपास के पुरा अवशेषों में भी खोजने पर झलके। ये शोध हेतु बड़ा ही रोचक विषय बनता है।

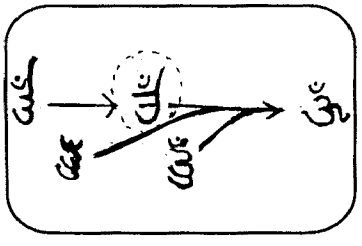

यह अब एक विडंबना है कि हम उन चित्रों और संकेतों को तभी समझ सकते हैं जब हम उनसे परिचित हों। एक व्यक्ति भूखा था उसने पेट की ओर इशारा करके हाथ मुंह की ओर बढ़ाया किंतु छुरी कांटे से खाने वाला व्यक्ति मात्र इतना ही समझ सका कि उसे पेट में कुछ कष्ट है। उसे हाथ का मुंह तक लाया जाना समझ में नहीं आया। यही स्थिति अब सैंधव लिपि के साथ घट रही है। जिसने उस अध्यात्म और जीवन शैली को भुला दिया है वह भला उसे कैसे समझेगा? उसको समझने के लिए हमें उन व्यक्तियों के निकट जाना होगा जो उस जीवन शैली से परिचित हैं।

भला कुऐं से जल निकालना कौन पसंद करेगा जब घरों में नलों की भरपूर व्यवस्था हो? नदी और झरनों, तालाबों को तब कौन पसंद करेगा? यही कारण रहा कि प्राचीन काल में कुएं जलाशय खुदवाए जाते थे तो आज अब नल हैं। नदियों में बाढ़ आती थी तो अब आज ट्यूब वैल घर-2 पानी का साधन बने हुए हैं। किंतु जैन 'मंदिरों' और जैन 'चौकों' का आधार आज भी कुएं हैं जिन्हें 'दकियानूसी' कहकर 'आधुनिक हवा' ने ठुकराया है। भारत में कुऐं भारत का 'पुरा' वैभव हैं।

सिरिभूवलय ग्रंथ में ओंकार की महत्ता बतलाते हुए अनेक गाथाएँ हैं। 'वह बीजाक्षर तो है ही, एक अंक भी है और भूवलय भी। वही दिव्य नाद है, वही परमात्म वाणी। वही सिद्ध स्वरूप है और वही केवल ध्वनि। वही शुद्धाक्षर है, वही हमारा अंत। चारों वेदों में इस ओम सा अन्य शब्द भी नहीं।' इस प्रकार ओम एक 'अंक' भी है और 'स्वर' भी, 'अक्षर' भी है और 'शब्द' भी। वही भूवलय कहा गया है-' (चित्र २) वह 'जाप'भी है और 'मंत्र' भी

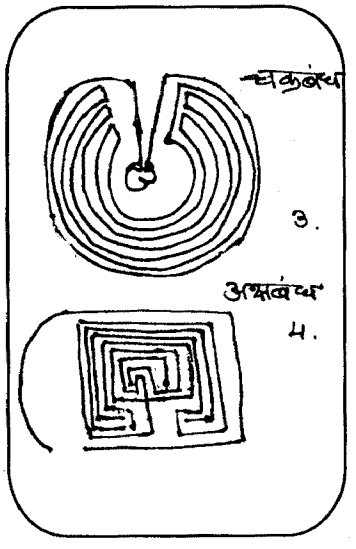

विन्ध्यगिरि पर चट्टान के वक्ष पर एक अत्यंत प्राचीन आकृति उकेरी हुई दिखती है जो मेरे अनुमान से भूवलय का चक्रबंध होना चाहिए। इसे मैंने फोटो में अंकित कर लिया है और उसे पाठकों के सामने विस्तार में रखना उचित समझती हूँ। इसी (चित्र ३) से मिलता जुलता एक पाइलोस टेब्लेट १९५७ में एन्ड्रयू राबिन्सन ने अपनी पुस्तक 'लॉस्ट लेंग्वुएजेस' में दर्शाया है। (चित्र ४)

विन्ध्यगिरि पर प्राप्त (चित्र ३) आकृति घेरों के अंदर घेरे बनाती सबसे अंदर ॐ का रूप लिए है जो सिरिभूवलय में प्रस्तुत वर्णन से बहुत मेल रखती है। 'भूवलय को यदि अक्षर रूप में बना लिया जाए तो चतुर्थ खंड में एक कक्षपुट निकलता है। उसी कक्षपुट को चक्रबंध करने से एक दूसरा कक्षपुट तैयार हो जाता है। इसी प्रकार बारंबार करते जाने से अनेक कक्षपुट निकलते रहते हैं। इन्हीं कक्षों में जगत के रक्षक अक्षर बंधों में से समस्त भाषाएँ निकलकर आ जाती हैं।' अमोघ वर्ष-१ को यह ग्रंथ सन ६३६ में पढ़ाया गया था। अर्थात् यह अमोघ वर्ष -१ से और भी प्राचीन रहा है।

अंकों की महत्ता १ से ९ तक बतलाते हुए इस ग्रंथ में बतलाया गया है कि प्रथम पांच अंक पांच परमपद दर्शाते हैं। अर्थात् १. सिद्ध २. अरहंत ३. आचार्य ४.उपाध्याय ५.सर्वसाधु ६. सच्चा धर्म ७. परिशुद्ध परमागम ८. जिनेन्द्र भगवान् की मूर्ति और ९. गोपुर अथवा द्वार अथवा शिखर अथवा मानस्तंभ (पृ. १०३/६वाँ अध्याय, सर्वार्थसिद्धि संघ बेंगलोर का सिरिभूवलय ग्रंथ)

'रत्नत्रय' के स्वरूप को दर्शाते हुए उसे (3x3) की चरमावस्था में बतलाया गया है। सम्यक् दर्शन, सम्यक-ज्ञान और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यक्चारित्र की पुष्टि हेतु कृत, कारित, अनुमोदना का जो महत्त्वपूर्ण योगदान है उसे दर्शाते हुए बतलाया गया है कि उस ९ अंक में ३६३ मतों का समावेश है। एक अंक के मिलाने पर प्राप्त १० अंक से ऋग्वेद की उत्पत्ति हुई है। इसी को पूर्वानुपूर्वी अर्थात् पश्चात् आनुपूर्वी कहते हैं। ऋग्वेद 'द्वादशांगी-जिन-आगम' वृक्ष की एक शाखा रूप 'उत्पन्न' है। 'ऋक्' अर्थात् शाखा है। ऋग्वेद भी शाखा है। वह ऋग्वेद तीन प्रकार का दर्शाया गया है। मानव ऋग्वेद, देव ऋग्वेद, और दनुज/दानव ऋग्वेद।' इनमें सिर्फ मानव ऋग्वेद ही मानवों के हेतु है जिसमें गौरक्षा, पशुओं की रक्षा और ब्रह्मों/आत्मलीनों (ब्राह्मणों) की रक्षा तथा जिन धर्म की समानता सिद्धि की अपेक्षा है। जिनधर्म आत्मधर्म होने से हर जीव का धर्म है इसीलिए वह अहिंसा धर्म है। जिनधर्म के अंदर हर जीव की रक्षा निहित है।'

भाषाओं के बारे में भूवलय ग्रंथ से यही जानकारी मिलती है कि प्राचीन काल से ही जिन अठारह महाभाषाओं और ७०० उपभाषाओं का वर्णन हम सुनते जानते आए हैं वे इसी भूवलय के चक्रबंधों (बंध/रचना) में समाहित हैं जिन्हें आचार्य कुमुदेन्दु ने ५९ अध्यायों और १२५२ बारह सौ बावन चक्रबंधों में प्रस्तुत किया है। इन चक्रबंधों को पढ़ने की अलग-अलग विधियाँ हैं जिनके आधार पर उनको नाम दिए गए हैं- यथा चक्रबंध, हंसबंध, शुद्धाक्षर बंध, शुद्धांक बंध, अक्षबंध, अपुनरूक्ताक्षर बंध, पद्मबंध, शुद्धनवमांक बंध, वरपद्मबंध, महापद्मबंध, द्वीवबंध, सागर बंध, उत्कृष्ट पल्यबंध, अम्बुबंध, शलाकाबंध, श्रेण्यक बंध, लोक बंध, रोमकूपबंध, क्रौंचबंध, मयूर बंध, सीमातीतबंध, कामदेव बंध, कामदेव पद पद्म बंध, कामदेव नख बंध, काम देव सीमातीतबंध, गणितबंध, नियमकिरण बंध, स्वामीनियम बंध, स्वर्णरत्न पद्मबंध, हेमसिंहासन बंध, नियम निष्ठाव्रतबंध, प्रेमरोषविजय बंध, श्री महावीर बंध, महाअतिशय बंध, कामगणित बंध, महामहिमा बंध, स्वामी तपस्वी बंध, सामन्त भद्रबंध, श्रीमंत शिवकोटि बंध, महिमा तसबंध, कामितफलबंध, शिवाचार्य नियम बंध, स्वामी शिवायन बंध, नियम निष्ठा चक्रबंध, कामितबंध भूवलय, सूत्र वलय बंध, प्रथमोपशम सम्यकत्व बंध, गुरु परम्परा आचाम्ल व्रत बंध, सत्तपबंध, कोष्ठक बंध, अध्यात्म बंध, सोपसर्ग बंध, तपोदर्श, तपोबंध, सत्य वैभव बंध, उपशमक्षयादि बंध, सच्चारित्रबंध, अनुपरुक्त बंध आदि विधियाँ।

इनके अनुसार विन्ध्यगिरि पर अंकित 'चक्रबंध' रोमकूप बंध जैसा प्रतीत होता है और पाइलोस टेब्लेट 'अक्ष बंध' जैसा।

डॉ. महेन्द्र मनुज इस दिशा में कार्यरत हैं आशा है कि भूवलय का पठन हमारे सामने मानव विकास की नई विधियाँ लाएगा। वही चक्रबंधों की विशेषता समझकर बतला सकते हैं (कदाचित) कि चित्र ३ और ४ क्या संभव हैं।

विन्ध्यगिरि की उस खड़ी शिला पर अंकित दो मुनि अपनी पीछी कमण्डलु सहित कायोत्सर्गी खड्गासन मुद्रा में हैं। वे दोनों भी अति प्राचीन पुरा अंकन की साक्षी हैं जो दो तपस्वी बंधु कुलभूषण तथा देशभूषण मुनि को प्रतिलक्षित करते हैं। बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रत जी के काल के ये दोनों भाई सैंधव पुरा प्रतीकों में बार-बार उभर कर सामने आए हैं भले ही रामायण नहीं झलकी। एक सील/मुहर ऐसी है जो दो हृदयों को एक साथ दर्शाती है वे वीर धनुर्धारी हृदय हैं अर्थात् इन दोनों भाईयों की मानसिक चंचलता को प्रकट करती है। बाद की मुहर उन्हें अपने आप में स्वसंयम के भालों द्वारा संकल्पित दर्शाती है। तीसरी मुहर उन्हें आत्मस्थ दर्शाती है और चौथी मुहर उनका रत्नत्रयधारी होना। वे अब अगली दो मुहरों में तपस्वी भव्य के रूप में दर्शाए गए हैं तथा अगली मुहर में अतिनिकट भव्य। इसके बाद की मुहर उन्हें पुरुषार्थी रूप में दर्शाती है- हमारी शिला के चित्रांकन की तरह। वे दोनों ही सल्लेखना झूले में दीखते हैं और फिर पंचम गति की साधनारत स्थिति में। अंत में उन्हें भी चक्र से पार एरण्ड के बीजवत् पंचमगति धारी दर्शाया गया है। यह सब संकेतमय है।

भाषाविदों ने इन संकेतों को 'पुनरावृत्ति' की श्रेणी में रखकर अपना उद्यम समाप्त कर दिया किंतु वह तो पुनरावृत्ति नहीं दो बंधुओं की कहानी है जो जीवन की अति मूल्यवान सीख दिखलाती है। यह कल्पना नहीं साक्षात् घटित घटना है जिसे इतिहासकारों ने डायरी और ताड़पन्नों पर नहीं शिला के वक्ष पर शाश्वत् स्मृति हेतु अंकित किया है।

उसी बंधु अंकन के नीचे मंदिर की छत को अपने कंधे पर रखे एक स्पष्ट किंतु छिपी हुई सी कायोत्सर्गी जिन मुद्रा है जिसे यहाँ चित्र १ में दर्शाया गया है। यह दिगम्बरी जिन मुद्रा सर्वाधिक प्राचीन अंकन है। इस शिला पर इसी के समीप बहुत ध्यान से देखने पर एक भाला, एक पीछी, एक त्रिशूल और सात खड़ी लकीरें अति प्राचीन (पुराकाल) काल से अपना संदेश दे रही हैं। यह पुरालिपि अन्य कुछ नहीं इसी सैंधव लिपि में अध्यात्म का अत्यंत गूढ़ उपदेश है। वह उपदेश इसी कायोत्सर्गी जिनमुद्रा से संबंधित है।

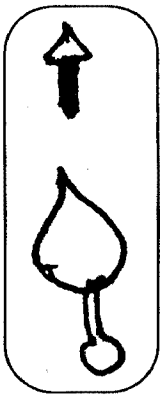

भाला स्वसंयम का प्रतीक है जो हिंसा का नहीं अपनी हाथी जैसी शक्तिशाली इच्छाओं का निरोध करने के लिए अंकुश है।

इसी के बाद की वह पीछी जिन श्रमण के महाव्रत की प्रतीक है जिसके साथ २२ परीषहों की जय का उद्देश्य है। इसकी घुंडी पर से उत्तर कालीन लेख को फ्रेम किया गया है जो प्राचीन कन्नड़ में हैं।

अब एक स्पष्ट त्रिशूल है जो इस संदर्भ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में महाव्रती के रत्नत्रय का प्रतीक है। सम्यक् दर्शन, सम्यक ज्ञान और सम्यक चारित्र।

अब सात खड़ी लकीरें सप्त तत्त्वों की द्योतक हैं जो जीव, अजीव, आस्त्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष की द्योतक हैं जो जैन अध्यात्म का मूल हैं और जिन्हें महाव्रती प्रतिक्षण याद रखता है।

तपस्वी का साक्षात् कायोत्सर्गी रहना यह बतलाता है कि वह आत्मस्थ है।

विन्ध्यगिरि की खड़ी शिला पर यह अंकन एक बहुत बड़ी उपलब्धि है जो विश्व के सम्मुख सर्वप्राचीन मानव सभ्यता की कुंजी स्वरूप सैंधव लिपि के रहस्य उद्घाटित करती है। यह कि-

१. सैंधव लिपि जिनशासन की महत्ता दर्शाती एक प्राचीन लिपि है।

२. जो संकेत यहाँ जीवंत हैं उन्हें ही सैंधव संस्कृति में छोटी-छोटी मुहरों के रूप में दर्शाया गया है। वह संस्कृति इसी तरह दूर-दूर तक फैली।

३. सैंधव लिपि को एक मात्र जैनाधार से ही समझा जा सकता है।

४. ऋग्वेद, गायत्री सूत्र, माहेश्वर सूत्र और अनुष्टुभ छंद के द्वारा ऐड़ी-चोटी की भरपूर मेहनत के बाद भी वह लिपि पढ़ी नहीं जा सकी है। यही इस बात का साक्षी है कि सैंधव लिपि जन-जन के हितार्थ चित्रों और संकेतों का आधार लेकर हमारी पुरा पीढ़ियों द्वारा हम तक प्रेषित की गई है। इसे सुरक्षित रखते हुए जन-जन तक पहुँचाना हमारा कर्त्तव्य है।

इसके संकेताक्षर अक्षर ही नहीं शब्द और महासूत्र हैं जो अपने अंदर गंभीर अर्थ संजोए हैं यथा-

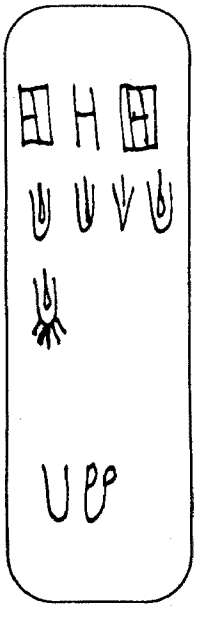

चौखट या दहलीज़ हैं जिसके द्वारा घर और गृही का बोध होता है।

ओखल और मूसल हैं जिनके बिना धान्य उपलब्धि नहीं। ये आरंभी गृहस्थ के द्योतक हैं।

आरंभी गृहस्थ के ओखल मूसल, चूल्हा, चक्की, बुहारी और सूपा आवश्यक जीवनोपयोगी साधन हैं जिन्हें जैन भाषा में पांच सून कहा गया है। ये भी आरंभी गृहस्थ के साधन हैं। इनसे आरंभी हिंसा होती है। यह वातावरण का द्योतक है इसे विद्वानों ने 'पैमाना' कहा है।

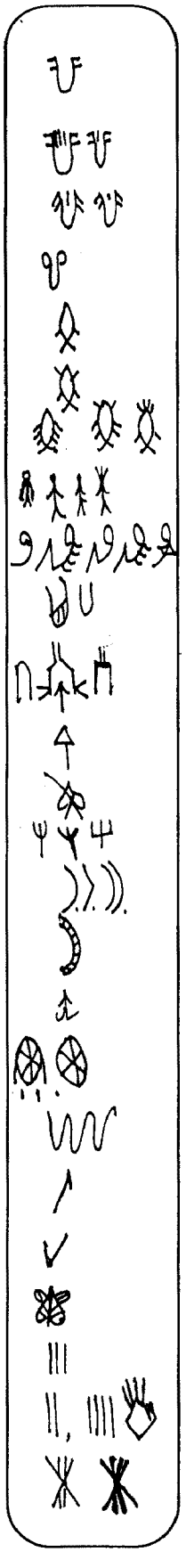

यह वातावरण जंगल का द्योतक है जिसे सैंधव प्रतीकों में अथवा रूप में तपस्वी के साथ दर्शाया है। कलाकार द्वारा इसे सहज रूप में दर्शाया जाता रहा है जो वैराग्य, वानप्रस्थ और तप का द्योतक है इसी को अनेक लकीरों द्वारा अलग-अलग भूमिका में उपयोग किया गया है।

यह वैराग्य लिंग का द्योतक है अथवा दिगम्बरत्व का।

यह योगी है जो कायोत्सर्ग करता दर्शाया गया है। यह दिगम्बर है।

यह एक वस्त्रधारी है या आर्यिका अथवा ऐलक है।

यह क्षुल्लक या क्षुल्लिका है क्योंकि दो वस्त्र धारी हैं।

यह तपस्वी है जो दिगम्बर है।

यह करवट से सोता तपस्वी है जो सल्लेखना मुद्रा में है

यह सल्लेखना झूला या उसी सेवा गोझी है। (स्ट्रेचर) लाने ले जाने वाली।

यह स्वास्तिक के केन्द्र से उठती पंचमगति है। चार गतियाँ केंद्र से सटकर हैं।

यह स्वसंयम का भाला है जो तपस्वी अपने ही लिए उपयोग करता है।

यह स्वसंयमी है जिसने भाला अपने अंदर से निकाला है।

यह रुद्र का त्रिशूल नहीं रत्नत्रय है। ये धार्य है, हिंसा का शस्त्र नहीं।

यह पुरुषार्थ का धनुष है।

यह प्रतिमाधारण का पुरुषार्थ है।

ये विद्याधर हैं जो उड़ सकते थे।

यह काल चक्र, छह खंडीय है।

यह अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी की ३ चक्रीय रेखा है।

यह उत्सर्पिणी काल रेखा है।

यह अवसर्पिणी काल रेखा है।

यह तितली नहीं चंचल मन है।

यह तीन धर्मध्यान हैं।

यह दो अथवा चार शुक्लध्यान हैं।

यह अष्टकर्म हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

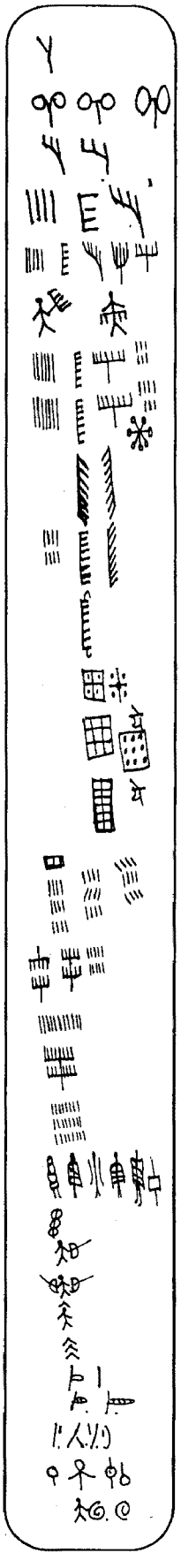

यह अर्हंत सिद्ध हैं।
यह निश्चय और व्यवहार धर्म है।
यह रत्नत्रय है।
यह चार अनुयोग और चार आराधना हैं।
यह पंच परमेष्ठी और पंचाचार हैं।
यह पंचाचारी हैं।
यह षट् द्रव्य हैं।
यह सप्त तत्त्व हैं और सप्त तत्त्व चिंतन।
ये सप्त नय हैं।
यह अष्ट मद पतन कराने वाले हैं (कुल, गोत्र, रूप, ज्ञान, तप, धन, शक्ति, सत्ता पद)
ये अष्ट वैभव हैं
ये नौ पदार्थ हैं
ये चार गतियाँ है
ये चार दुर्ध्यान हैं
ये नौ देवता हैं
ये नौ योनिस्थान हैं
ये द्वादश तप हैं
ये बारह भावनाएँ हैं
ये दश धर्म हैं
ये ग्यारह प्रतिमाएँ हैं
ये ग्यारह प्रतिमा व्रत हैं
ये सोलह कारण भावनाएँ हैं।
ये २४ तीर्थंकरों के प्रतीक हैं।
ये खड़गासन में मुक्ति का प्रतीक हैं। (कायोत्सर्गी सल्लेखना)
यह जाप है।
यह अर्धचक्री है
यह चक्री है।
यह छत्रधारी या छत्री है जो अपने छत्र के अंदर सबकी रक्षा करता है।
यह तीन छत्र तीर्थंकर के प्रतीक हैं जो कभी ५ और कभी ७ भी दिखते हैं
यह तीर्थंकर का द्योतक है। मध्य में यह लिंग पुल्लिंग है। यह गुणस्थान भी दर्शाता है।
यह सब तीर्थंकरत्व के द्योतक हैं। अरिहंत हैं।
यह सल्लेखना दर्शाते हैं।
यह केवलत्व है।
यह केवली द्वारा समुद्घात की लोकपूरन क्रिया दर्शाते हैं।
यह सल्लेखी को दर्शाता है, जो संकल्प बद्ध है।
यह पत्ती शाकाहार दर्शाती है।
यह पत्ती नहीं पीच्छी है जो महाव्रती दर्शाती है।
यह देशव्रती संयमी है अणुव्रती है।
यह महाव्रती है। सकलव्रती है।
यह शिखर तीर्थ है।
यह मांगी तुंगी तीर्थ है।
यह तद्भवी मोक्षपथी हैं।
यह स्वयंतीर्थ है।
यह स्वयंतीर्थ दिग-दिगन्त तक धर्म संदेश पहुंचा रहा है संभवतः यह क्षेत्र श्रमण बेलगोला है। जहाँ पर्वत पर अनादि काल से सल्लेखी पहुंचकर अपनी तप साधना करते रहे हैं।
यह नदी के तट पर साधना रत आर्यिका है।
यह बंद घर या आश्रम है/संघ है। प्रतिमा संयम है।
यह संघ का नेता है।
यह आचार्य हैं जिनके कंधों पर श्रावक संघ और श्रमण संघ का भार है।
यह चार अनुयोगी आचार्य हैं।
यह निकट भव्य है।
यह ऊलचूंल है जो चातुर्मास/चौमासा दर्शाता है। वहाँ इसकी आवश्यकता है।
यह भव्य हैं।
यह भी भव्य है।
यह मेरूपर्वत सहित ढाई द्वीप है।
यह जम्बूद्वीप है।
ये अष्टपद है।

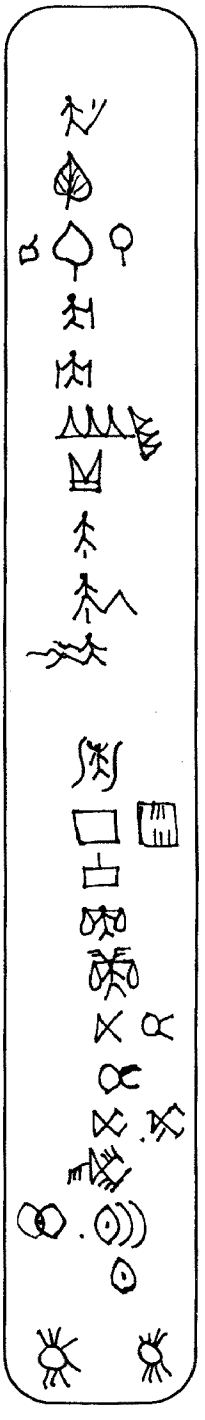

हर जैन बच्चे को इन संकेतों से परिचित होना चाहिए ताकि जहाँ-कहीं ये प्राचीन तीर्थ क्षेत्रों पर दिखाई दें इनको प्रकाश में लाया जा सके। ये चिन्ह अनछूती चट्टानों पर, गुफाओं में और प्राचीन मूर्तियों पर दिखाई देना संभव हैं। चित्र-१ में दृष्ट संकेतों की भांति इनका महत्व अति विशेष है जो जैनधर्म की पुरातनता का सजीव प्रमाण हैं।

सिरिभूवलय ग्रंथ में एक ऐसा भी वर्णन आता है कि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'दण्डकारण्य वास में इन्द्रगिरी (विन्ध्यगिरि) पर लक्ष्मण ने अपनी गदा दंड की नोक से बड़े पर्वत की एक शिला पर एक जिनबिंब रेखाकिंत किया। वे रेखाएँ बाहुबलि की मूर्ति के समान (खड़गासन) दिखने लगीं। तब रामचन्द्र जी ने उसी मूर्ति की आकार रेखा को मूर्ति मानकर उसका दर्शन कर भोजन किया।' कदाचित इस खड़ी शिला पर अंकित ये वह बिंब हो जिसके साथ आज भी सैंधव लिपि के भाला, पीछी, त्रिशूल और सप्त तत्त्व अंकित हैं।

कटवप्र पर जो सैंधव लिपि और संकेत दृष्ट थे वे सब यहाँ विन्ध्यगिरि पर भी प्रचुरता से अंकित हैं साथ ही यहाँ अन्य अनेक संकेत भी उपलब्ध हैं। विशेषकर तीन शीर्ष वाला घोड़ा (व्यन्तर/यक्ष) तथा मंदिर का पुराकालीन अस्तित्व।

संपूर्ण विन्ध्यगिरि की चट्टान पर सैंधव लिपि 'कालीन' सी बिछी पड़ी है। आश्चर्य की बात यह विशेष है कि चट्टान की परतें उखाड़ी जाने पर नीचे वाली चट्टान में भी लिपि झलकती है। यह तभी संभव है जब पिछली चट्टान पर भी उकेर की गई हो। अथवा उकेर इतनी गहरी हो कि उस कड़ी चट्टान को बारीकी से भेद कर नीचे तक पहुंच गई हो। यह समझ से परे है कि उस काल में बारीक लेखनी का उपयोग करते हुए भला किस प्रकार इतनी सुंदर लिपि उकेरी गई होगी? पत्थर पर अंकित यह पुरा लिपि विश्व का महान अचरज है जो अब तक अनदेखी उपेक्षित पड़ी थी यह तो मानना ही होगा। इसके समस्त सूत्र सिरि भूवलय में संभव हैं यह और भी बड़ा आश्चर्य है।

जो अठारह महाभाषाएँ भूवलय में समाहित थीं वे हैं- हंस, भूत, वीरयक्षी, राक्षसी, ऊहिया, यवनानी, तुर्की, द्रामिल, सैंधव, मालवणीय, किरीय, नाड्ड, देवनागरी, पारसी, वैविध्यन, लाड आमित्रिक एवं चाणक्य! अर्थात् 'देवनागरी' आचार्य कुमुदेन्दु के काल से पूर्व से ही एक महाभाषा के रूप में प्रतिष्ठित थी। 'सैंधव' भी एक महाभाषा थी अत: देवनागरी का ऊँ विभिन्न रूपों में सिंधु घाटी सभ्यता में प्रभावी रहा हो विशेष आश्चर्य की बात नहीं है। उस काल की सैंधव कदाचित यही चित्र और संकेत लिपि रही हो सो भी असंभव नहीं है। उस स्थिति में जैन सिद्धांतों को प्रतिपादित और अभिव्यक्त करने वाली यह चित्र और संकेत लिपि अत्यंत महत्वपूर्ण बन जाती है जिसको जाने बिना किसी भी भाषाविद का ज्ञान अधूरा माना जाएगा।

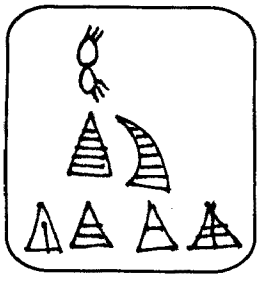

भरत ऐरावत में रत्नत्रय है
चार आराधना वाले भरत ऐरावत क्षेत्र
ये गुणस्थान है, उन्नति का मार्ग।
यह भी गुणस्थान का संकेत देते हैं
जो तद्भवी मोक्ष तक दर्शाता है

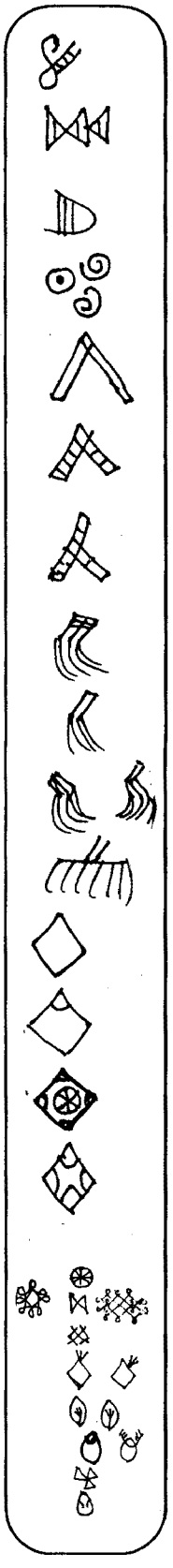

साधुओं के चिंतन का खेल यह सर्प सीढ़ी प्राचीन काल से भावों की उठान गिरान द्वारा गुणस्थान बतलाती है।

यह गुणोन्नति का अंकन एक ओर आर्यिका तथा दूसरी ओर साधु की स्थिति दर्शाता है।

यह चेलक अचेलक की तपोन्नति दर्शाता है।

यह गुणोन्नति आर्यिका एवं वस्त्रधारी साधुओं की है।

यह केवली समुदघात है जिसमें दंड, प्रतर और लोकपूरण की स्थितियाँ दृष्ट हैं।

यह तपस्या का प्रतीक है जो कभी उपशम में गिरान भी दिला सकता है।

यह भी उपशम का प्रतीक है।

यह क्षयोपशम का प्रतीक है।

यह रत्नत्रय पंचाचार में बदल रहा है।

यह निश्चय और व्यवहार धर्म चार आराधन में बदल रहा है।

यह रत्नत्रयी पंचाचार है इसे विद्वानों ने 'हस्त' पुकारा है।

यह निश्चय व्यवहारी सप्त तत्त्व चिंतन है।

यह लोक है

लोक में सिद्ध शिला पर मक्खन सा तैरना शुद्ध जीव।

लोक में चार अघातियों से घिरी, भवचक्र में फँसी जीवस्थिति

लोक में चार गतियों की अष्टकर्मी भटकान

भव चक्र में अष्ट कर्मी उलझन

अंतहीन भटकान में पर्यायें बदलता जीव निकलने को राह नहीं।

अंतहीन भटकान से जूझन

रत्नत्रयी संसार

रत्नत्रयी जम्बूद्वीप

जम्बूद्वीप में मुक्ति का साधन, अर्ध्व उठान

त्रिगुप्ति

सामायिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गतांक से आगे

अनर्गल-प्रलापं वर्जयेत्

मूलचन्द्र लुहाड़िया

पृष्ठ २९ - 'दि. जैन वीतरागी साधु कभी अव्रती और सरागी देवी देवताओं की पूजा अर्चना नहीं करते। तो दि. जैन मुनि या आचार्य का वेश रखकर भी सरागी देवी देवताओं की पूजा अर्चना करने का समर्थन/पोषण करता है अथवा उपदेश देता है, वह स्वयं वीतरागी साधु मुनि/आचार्य नहीं है। ऐसा साधु भौतिक चमत्कारों द्वारा लोगों को प्रभावित कर कुमार्ग का पोषण करता है।'

पृष्ठ ३० 'बुन्देलखण्ड में एक अनुपम बात यह रही कि वहां की समाज ने कभी शासन देवी देवताओं को न पूजा और न भट्टारकों द्वारा रचित विधि-विधान पूर्वक पूजा अर्चना की और न सवस्त्र भट्टारकों को गुरु की मान्यता दी। अपितु मूल आम्नाय का ही पोषण किया। यह बुंदेलखण्ड के लिए गौरव की बात है कि आज तक श्रावकों ने मूल शुद्ध आम्नाय की परंपरा को अक्षुण्ण रखा।'

पृष्ठ ३१ 'दि. जैन समाज में एक वर्ग भट्टारकीय परंपरा को मानता रहा और दूसरा वर्ग इसका विरोध करता रहा।' दि. समाज के मूलसंघ के शुद्धाम्नायी वर्ग ने अपनी विचारधारा के कारण सवस्त्र भट्टारकों को गुरु की मान्यता नहीं दी तथा भट्टारकों को गुरु मानने वाला अथवा उसकी विचारधारा पर आश्रित वर्ग इससे पृथक हो गया।

'बुंदेलखण्ड का दि. जैन समाज प्रारंभ से ही मूल संघ की शुद्धाम्नाय मान्यताओं की पालक रही है। और कालान्तर में इसे ही यहाँ तेरह पंथी आम्नाय कहा जाने लगा।'

पृष्ठ ३३ 'मूलसंघ शुद्ध आम्नाय में सचित्त द्रव्य से पूजा वर्जित है और रागीद्वेषी असंयमी देवों की पूजा वीतराग धर्म के विरूद्ध है। सरागी और वीतरागी दोनों को मान्यता देना विनय मिथ्यात्व में शामिल है।'

पृष्ठ ३४ 'सवस्त्र भट्टारकों का युग प्रायः समाप्त हो गया है तथा अब दिगम्बर (निर्वस्त्र) साधुओं का उद्भव प्रमुखता से देश के बहुभागों में प्रायः हुआ है। परंतु भट्टारक युग की मान्यता/आचरण/शिथिलाचार जो मूल आम्नाय का विकृत रूप जाना और माना गया है, उसका स्वरूप फिर से कई निर्वस्त्र साधुओं में भी पाया जाने लगा है। यंत्र, तंत्र, मंत्र, भौतिक लाभ का प्रलोभन, शासन देवी देवताओं की पूज्यता तथा मुनित्व के तेरह प्रकार के चारित्र से विचलित साधुओं से सम्बद्ध होकर श्रावक उन्मार्ग की ओर अग्रसर हो रहे हैं, जो युक्ति युक्त नहीं है। अतः आगम की कसौटी पर कसकर देव शास्त्र गुरु का श्रद्धान करना ही उपादेय है।'

हूमड़ इतिहास भाग २ में भट्टारक उद्भव अध्याय में निम्न वाक्य पठनीय हैं:-

पृष्ठ २१४/२१५ 'भट्टारक परंपरा आचार्य बसंत कीर्ति १३ वीं शताब्दी से प्रारंभ हुई है।' श्वेताम्बर और दिगम्बर भेद दृढ हो जाने के बाद पुनः दिगम्बर सम्प्रदाय में वस्त्र धारण करने की प्रथा शुरू हुई। मुस्लिम राज्यकाल में इसको और अधिक बल मिला और आखिर भट्टारकों के लिए अपवाद मार्ग के रूप में मान्य कर लिया गया। यद्यपि व्यवहार में वस्त्र का उपयोग भट्टारकों के लिए समर्थनीय ठहरा दिया गया तथापि तत्त्व की दृष्टि से नग्नता ही पूजनीय मानी जाती रही। भट्टारक पद प्राप्ति के समय कुछ क्षणों के लिए ही सही परंतु नग्न अवस्था धारण करना आवश्यक रहा। कुछ भट्टारक मृत्यु समीप आने पर नग्न अवस्था लेकर सल्लेखना को स्वीकार करते रहे। नग्नता के इस आदर के कारण ही भट्टारक परंपरा श्वेताम्बर सम्प्रदाय से पृथकता घोषित करती रही।

पृष्ठ २१५ 'भट्टारक परंपरा का दूसरा विशिष्ट आचरण मठ और मंदिरों का निवास स्थान के रूप में निर्माण व उपयोग था।'

'इन दो प्रथाओं के कारण भट्टारकों का स्वरूप साधुत्व से अधिक शासकत्व की ओर झुका और अंत में यह प्रकट रूप से स्वीकार भी किया गया। वे अपने को राज गुरु कहलाते थे और राजा के समान ही पालकी छत्र चामर गादी आदि का उपयोग करते थे। वस्त्रों में भी राजा के योग्य जरी आदि से सुशोभित वस्त्र रूढ हुए थे। कमण्डलु और पीछी में सोने चांदी का उपयोग होने लगा था। यात्रा के समय राजा के समान ही सेवक सेविकाओं और गाड़ी घोड़ों का इंतजाम रखा जाता था। इसी कारण भट्टारकों का पट्टाभिषेक राज्याभिषेक की तरह बड़ी धूम-धाम से होता था। इसके लिए पर्याप्त धन खर्च किया जाता था जो भक्त श्रावकों में से कोई एक करता था। इस राज वैभव की आकांक्षा ही भट्टारक पीठों की वृद्धि का एक प्रमुख कारण रही यद्यपि उनमें तत्त्व की दृष्टि से कोई मतभेद होने का प्रसंग ही नहीं आया।'

पृष्ठ २१९ 'मंत्र तंत्रों की साधना द्वारा किसी देवी या देव को प्रसन्न कर लेना भट्टारकों का विशेष कार्य माना जाता था। ऐहिक दृष्टि से मुक्त होने के कारण और श्रावकों से कम सम्बन्ध होने के कारण मुनियों को मंत्र साधना करने का निषेध था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भट्टारकों का स्थान समाज के शासक के रूप में होने से उनके लिए मंत्र साधना इष्ट ही समझी जाती थी। सूरत शाखा के भट्टारक मल्लि भूषण ने पद्मावती की आराधना की थी तथा लाड बागड गच्छ के भ. महेन्द्र सेन ने क्षेत्रपाल को संबोधित किया था, ऐसे उल्लेख प्राप्त हुए हैं।'

पृष्ठ २२१ 'भट्टारक सम्प्रदाय के इतिहास में जैन समाज की अवनति का ही इतिहास छिपा है। जैन समाज की अनेक पत्रिकाओं धर्म मंगल, तीर्थंकर आदि में समय समय पर भट्टारक सम्प्रदाय के बारे में लेख छपे हैं। धर्ममंगल ने सन् १९९७ भट्टारक सम्प्रदाय विशेषांक निकाला था जो ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। प्रसिद्ध विद्वान डॉ. विद्याधर जोहरापुर ने एक शोध प्रबंध 'भट्टारक सम्प्रदाय' लिखा है जो प्रकाशित भी हो गया है। स्व. पं. नाथूराम जी प्रेमी ने एक पत्र श्री पं. कैलाशचन्द्र जी शास्त्री वाराणसी को दिनांक १९.१२.५६ को लिखा था जो जैन संदेश पत्रिका के शोधांक १५ में छपा है उसमें लिखा है' मुझे अब ऐसा मालूम होता है कि वस्त्र को अपवाद मानने वाले यापनीयों की ही उत्तराधिकारिणी भट्टारक परंपरा है।

श्री डॉ. नेमीचन्द्र शास्त्री ज्योतिषाचार्य ने 'श्री पं. जुगल किशोर जी मुख्तार-कृतित्त्व और व्यक्तित्व, पुस्तक लिखी है जो सन् १९६८ में अ.भा. जैन विद्वत् परिषद् द्वारा प्रकाशित हुई है। उस पुस्तक के पृ. १५-१६ में लिखा है 'जैन धर्म में भट्टारकों का स्थान अत्यंत सम्माननीय रहा है। ये भट्टारक मठाधीश होते थे और उनके पास विपुल धन राशि एकत्र रहती थी। इनमें से कुछ सच्चे साहित्य साधक भी हुए हैं, पर अधिकता उन्हीं की रही जिन्होंने जनता को चमत्कृत करने के लिए अपने धर्म और साहित्य को विकृत किया। इनमें से कुछ भट्टारक ऐसे भी हैं जो ब्राहमण से जैन हुए हैं। इनमें अपनी प्रतिभा तो नगण्य थी, किंतु अपनी यशोगाथा फैलाने की भावना सर्वाधिक वर्तमान थी। वे कवि न होने पर भी कवि बनना आवश्यक समझते थे और अपनी इस प्रवृत्ति को संतुष्ट करने के लिए वे विभिन्न ग्रन्थों से कुछ अंश चुराकर भानुमति का कुनवा तैयार कर देते थे। वे अपनी इस स्तेय कला में इतने प्रवीण होते थे कि बड़े-बड़े दिग्गज भी उनकी इस चोरी को पकड़ नहीं पाते थे। अपने इस कर्म को छिपाने के लिए इनका सिद्ध गुटका यह था कि वे वैदिक वाङमय से इन अंशो को ग्रहण करते थे। उन दिनों बहुत कम विद्वान ऐसे होते थे जो वैदिक वाङमय का अध्ययन कर उन चोरी किए गए अंशों को पकड़ सकें। इस कारण इनकी चोरी ही मौलिकता बन गई थी।'

हजारों वर्षों के इतिहास में पं. जुगल किशोर मुख्तार ही ऐसे प्रथम व्यक्ति हुए जिन्होंने इन भट्टारकों की इस चोरी को पकड़ा और उसे परीक्षार्थ जैन समाज के समक्ष प्रस्तुत किया। इस कार्य में उन्हें अथक परिश्रम करना पड़ा और ग्रन्थ परीक्षा के नाम से अपनी इस शोध खोज को प्रकाशित कराया।

पृष्ठ १६ 'ग्रंथ परीक्षा' के बारे में श्री पं. नाथूराम जी प्रेमी ने लिखा है:- ' मैं नहीं जानता कि पिछले कई सौ वर्षों में किसी भी जैन विद्वान ने कोई इस प्रकार का समालोचनात्मक ग्रंथ इतने परिश्रम से लिखा होगा और यह बात तो बिना किसी हिचकिचाहट के कही जा सकती है कि इस प्रकार के परीक्षा लेख जैन साहित्य में सबसे पहले हैं।' मुख्तार साहब की मान्यताओं का तात्कालिक परिणाम यह हुआ कि अनेक जैन विद्यालयों के पाठ्यक्रम में संशोधन किया गया और भट्टारकीय परंपरा की सामग्री को पठन क्रम से अलग कर दिया गया।

श्री ब्र. चुन्नी भाई देसाई (राजकोट वाले) द्वारा लिखित पुस्तक 'श्रमण संस्कृति में संघ भेद' सन् १९७२ में उज्जैन जैन समाज ने प्रकाशित की उसमें 'भट्टारक मार्ग की उत्पत्ति' नामक अध्याय में दिल्ली के बादशाह द्वारा जैन मुनिराज को वस्त्र धारण करने के लिए बाध्य करने का कथानक लिखने के बाद पृष्ठ ६९ पर आगे लिखा है।' अनन्तर भट्टारक लोगों ने प्रभुता और संपत्ति प्राप्त करके निवृत्ति प्रधान जैन धर्म को अत्यंत दूषित एवं प्रवृत्ति प्रधान बना दिया। अपने को मूलसंघ आम्नाय के कहकर मनमानी प्ररूपणा करना शुरू किया। इन लोगों ने अपनी गद्दी पर ब्राह्मणों को बैठाया और सब वैष्णव धर्म के पूजन गोमूत्र से प्रतिमा का प्रक्षाल करना, योनि का पूजन आदि सब ही कुछ शास्त्रों में लिख मारा। नए-नए ग्रंथ बनाकर प्रचार कर दिया। मुकुट सप्तमी में भगवान को मुकुट पहनाना आदि सब कुछ वैष्णव धर्मानुकूल कर दिया। इस प्रकार इनके शिथिलाचार पोषण को कोई भी रोक नहीं सका, क्योंकि इनके पास बादशाहों की सनदें तथा पट्टे परवाने थे। मंत्र और तंत्र शक्ति के साथ राजशक्ति का बल था। किसकी ताकत थी जो उनके सामने बोलता। प्रचार बढ़ता ही गया और जैन धर्म तथा इसका मुख्य निवृत्ति मार्ग का उद्देश्य रसातल में पहुँचता ही गया। कुछ काल बाद इस शिथिलाचार को दूर करने हेतु और इन बुराइयों को रोकने के लिए तेरह पंथ दल निकला।'

पृष्ठ ७३ आगे भट्टारक लोगों ने अपने को दिगम्बर जैन सम्प्रदाय का महाव्रती बतलाकर कितना परिग्रह आदि का आडम्बर किया उसका कुछ उल्लेख करते हैं।

पृष्ठ ७४ 'इस प्रकार अनेक शास्त्र विरूद्ध आचरणों से बहुत से लोग दु:खी हो गए और जब उनको उन्होंने भंडारों में से आगम लाकर दिखाए और इन्होंने कहा कि आप लोग जो करते हो वह आगम के प्रतिकूल है, तब भट्टारकों ने ऐसे श्लोकों को निकलवा दिए जो कि उनके प्रतिकूल पड़ते थे। और जो इनके अनुकूल पड़े ऐसे पद्य बनाकर ग्रन्थों में रख दिए या रखवा दिए।'

पृष्ठ ७४ 'पंचामृताभिषेक, केसर का लेप, सचित्त पुष्प भगवान पर चढ़ाना आदि अनेक शास्त्र विरूद्ध प्रवृत्ति करने वाले स्वयं कपड़े धारण कर समाज की आंखों में धूल डालने वाले, रईसी ठाठ रखकर मुनि की तरह गृहस्थों से नमोऽस्तु कहलाने वाले भट्टारकों को भ्रम एवं धोखा देने के लिए अपने को मूल संघ आम्नाय का बताना तथा मूल संघ की आम्नाय के उद्भट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विद्वान आचार्य थे उन जैसे ही नाम रखकर और अपनी प्रवृत्ति के अनुकूल ही ग्रंथ बनाकर जैन धर्म का अपवाद कर भोली समाज को सन्मार्ग से वंचित करने का पूर्ण प्रयास करना। बादशाही जमाने में इनको प्रभुता प्राप्त थी। अत: इनको उस समय मन चाही सफलता भी मिली थी। इन्होंने भगवान को भी कुंडल मुकुट वाला, केसर पुष्प धारण कराके परिग्रह युक्त किया था और कपड़े पहनने वाले साधुओं तक को भी दिगम्बर साधु मनवाने के लिए ग्रंथों में श्लोक बना बनाकर सिद्ध करने का प्रयत्न किया था। इसका एक उदाहरण देखिए।'

पृष्ठ ७५ अपवित्र पटो नग्नो नग्नश्रवार्धपट: स्मृत:।
नग्श्चमलिनो द्वासौ नग्न: कोपी नवानपि॥
कषाय वासता नग्नो नग्न श्वपनुत्तरीयमान।
अन्त: कच्छो वहि: कच्छे मूलकच्छ स्तथैवच॥

अर्थ : अपवित्र कपड़े पहनने वाला, आधा वस्त्र पहनने वाला, मैले कपड़े पहनने वाला, धोती के सिवाय दूसरा कपड़ा न रखने वाला केवल भीतर की तरफ कसौटा लगाने वाला और बिल्कुल न पहनने वाला इस तरह अनेक तरह के नग्न माने गए हैं। अर्थात् वे वस्त्र सहित अपने आपको भी नग्न सिद्ध कर रहे हैं। इस प्रकार भट्टारकों ने दिगम्बर जैनधर्म के मूल सिद्धान्त अचेलकत्व अथवा नग्नत्व के लक्षण को ही विकृत कर दिगम्बरत्व की जड़ें ही खोदने का प्रयास किया है।

व्रत कथा कोष में निर्दोष सप्तमी के दिन के लिये लिखा है-

त्रियतां मुकुट मूर्ध्नि रचितं कुसुमोत्करै:।
कंठे श्री वृषभेशस्य पुष्पमाला च धार्यते॥

इस प्रकार अष्ट द्रव्यों से पूजन करके वृषभ जिनेन्द्र के मस्तक पर नाना प्रकार के पुष्पों से बनाया हुआ मुकुट तथा कंठ में पुष्पों की माला पहनानी चाहिए। ऐसे भट्टारकों ने मुनि के स्वरूप की विकृति के साथ-साथ जिनेन्द्र भगवान् के वीतराग स्वरूप को भी विकृत किया है।

इसके अतिरिक्त इतिहास लेखकों ने सर्वत्र इसको स्वीकार किया है कि दिगम्बर मुनि के भ्रष्ट रूप में भट्टारक बने। भट्टारकों ने मंदिर निर्माण, मूर्ति निर्माण प्रतिष्ठा पूजन-विधान साहित्य निर्माण आदि कार्य कर जैन संस्कृति की सेवा अवश्य की किंतु इन सबके पीछे लक्ष्य रहा इनके अपने व्यक्तिगत स्वार्थ की पूर्ति और धन संचय। श्रावकों की अंध श्रद्धा, मंत्र-तंत्र का भय और शक्ति के आतंक के आधार पर शोषण किया और उन्हें धर्म भीरू अज्ञानी बनाए रखा। जैन साहित्य के आध्यात्मिक एवं चारित्रिक पक्ष को गौण कर केवल सरागी देवी देवताओं की पूजा विधान मंत्र-तंत्र आदि को मुख्यता देते रहे।

आदरणीय श्री नीरज जी का यह कथन कि भट्टारकों पर आरोप लगाते समय इतिहास को देखते नहीं या जानबूझकर पाठकों एवं समाज को भ्रमित करना चाहते हैं, सर्वथा निराधार और मिथ्या है। ऊपर दिए हुए इतिहास के उद्धरणों से यह भलीभांति सिद्ध है कि भट्टारकों का वर्तमान रूप दिगम्बर मुनि का भ्रष्ट रूप है। भट्टारकों के उद्भव का इतिहास दिगम्बर जैन धर्म की विशुद्ध आचरण परंपरा के कलंक के रूप में जाना जायेगा। इन जैन आगम के विपरीत आचरण कर मिथ्यात्व का पोषण करने वालों के बारे में तथ्यात्मक वर्णन को यदि आरोप आक्षेप कहा जायेगा तो क्या शिथिलाचारी मुनियों के दुराचार की कठोर शब्दों में भर्त्सना करने वाले दिगम्बर जैन धर्म के सातिशय प्रभावक आचार्य कुंदकुंद महाराज को भी मुनियों पर आरोप, आक्षेप लगाने वाले कहेंगे? दिगम्बर जैन धर्म में सच्चे देव शास्त्र गुरु की श्रद्धा को सम्यग्दर्शन बताते हुए तीन लोक, तीन काल में जीव का सर्वाधिक कल्याणकारी कहा है, उसी प्रकार मिथ्या देव शास्त्र गुरु की मान्यता को मिथ्या दर्शन कहते हुए उसको लोक में जीव का सर्वाधिक अहितकारी निरूपित किया है।

एक बार कुंडलपुर क्षेत्र पर संयम वर्ष के उपलक्ष्य में आयोजित एक धर्म सभा में प.पू. आचार्य विद्यासागर जी महाराज के सान्निध्य में माननीय श्री नीरज जी द्वारा अपने भाषण में पीछी धारक साधुओं द्वारा संयम की पालना में तत्पर रहते हुए पीछी की मर्यादा की रक्षा करने पर जोर दिया था और यत्किंचित शिथिल आचरण वाले साधुओं द्वारा हो रही पीछी की मर्यादा भंग पर खेद प्रकट किया था। किंतु आज उन्हीं पं. नीरज जी को भट्टारकों के हाथों हो रहे संयम चिन्ह पीछी की इस दयनीय घोर अवमानना का समर्थन करते देख हमें अत्यधिक आश्चर्य मिश्रित खेद होता है।

माननीय श्री नीरज जी आगे लिख रहे हैं कि बीस पंथी आम्नाय की मिथ्या आलोचना के क्षेत्र में हमारे द्वारा अति हो रही है उसे हम रोकें। इसीलिए उन्होंने लेख का शीर्षक अति सर्वत्र वर्जयेत रखा है। भट्टारक सम्प्रदाय के बारे में उनके लेख लिखने तक हमने स्वयं तो कुछ भी नहीं लिखा था। लगता है यशस्वी स्वर्गीय विद्वान पं. नाथूराम जी प्रेमी की पुस्तक की सामग्री को श्री नीरज जी ने हमारी पुस्तक समझने की भूल की है। हमने कहीं बीस पंथ, तेरा पंथ की बात अपनी ओर से नहीं की है। पक्ष व्यामोह से ग्रसित दुर्भावना के कारण आपको आगम सम्मत विवेचन में बीस पंथ की आलोचना की गंध आने लगती है। जहां जैन तत्व दर्शन और जैन आचरण पद्धति का अवर्णवाद हो रहा हो वहां आगम के अनुकूल कहने व लिखने में अति भी वर्जित नहीं है। किंतु आगम विरूद्ध व्यवस्था के समर्थन में निराधार अयुक्तियुक्त कथन अनर्गल प्रलाप की श्रेणी में आता है। अत: अत्यंत नम्रता पूर्वक हाथ जोड़कर हमारा निवेदन है '**अनर्गल प्रलापं वर्जयेत्**'। विद्वद्वर क्षमा करें।

आपका यह कथन कि आज कौन भट्टारक श्रावकों को मारते-पीटते और आतंकित कर पैसे वसूल करते हैं, नाम बताएँ। यह ठीक है कि आज श्रावकों में थोड़ी बहुत जागरूकता आई है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसलिए आज भट्टारक आंतककारी व्यवहार नहीं कर पाते हैं। किंतु पुस्तक में जो कुछ लिखा है वह तत्कालीन घटनाओं के आधार पर लिखा है। हमने कब और कहां लिखा है कि ऐसा आज भी हो रहा है। आश्चर्य है कि आपने उस पुस्तक में वर्णित सभी घटनाओं को आज की घटना समझकर हमसे भट्टारकों के नाम पूछ रहे हैं। परंतु बंधुवर आपका ध्यान इस मूल तथ्य की ओर नहीं गया कि सभी भट्टारक आज भी भ्रष्ट मुनि के रूप में विद्यमान हैं, अपने आपको मुनिव्रत नमोऽस्तु करवाते हैं, अर्घ चढ़वाते हैं, पूजा करवाते हैं तथा पाद प्रक्षालन करवाते हैं। संयम चिन्ह पीछी रखते हैं किंतु उसके घोर अवर्णवाद स्वरूप पूरे आरंभ परिग्रह में लिप्त रहते हैं। कृपा करके आप ही बता दीजिए वे मुनि हैं या श्रावक और यदि श्रावक हैं तो उनके कौनसी प्रतिमा के व्रत हैं जिनको वे निरतिचार पालन कर पाते हैं। क्या वस्त्रधारी, परिग्रह धारी को मुनि अथवा धार्मिक गुरु जैन दर्शन स्वीकार करता है?

अग्रज विद्वान आपने हमें चुनौती दी है कि हमारे आक्षेपों के उत्तर में आपके पास इतनी सामग्री है कि शायद आपको एक पुस्तक लिखनी पड़े। प्रेमी जी के बारे में भी आपके पास इतना मसाला है कि आप सामने लायेंगे तो बड़ा संकट पैदा हो जायेगा। आप बड़े हैं, आपकी चुनौती को हम आशीर्वाद मानकर स्वीकार करते हैं। आपकी विद्वतापूर्ण पुस्तक हमें और सबको पढ़ने को प्राप्त होगी यह हमारा व सबका सौभाग्य होगा। स्व. प्रेमी जी के बारे में भी जो तथ्य हों पाठकों के सामने निःसंकोच रखिए। संकट की चिंता मत कीजिए। आपके मन में साहस है और लेखनी में शक्ति। आपने अब तक के लेखन में संकट की कब चिंता की है? फिर अब क्यों? आपके आगामी लेखन की आतुरता से प्रतीक्षा है।

आप आगमविज्ञ समाज के मूर्धन्य विद्वान हैं। उपाध्यक्ष होने के नाते महासभा धार्मिक विषयों में आपसे मार्ग दर्शन की अपेक्षा रखती है। आगम विरूद्ध लिंग धारण करने वाले भट्टारकों का अपनी साधारण सभा में पारित प्रस्ताव द्वारा समर्थन कर महासभा वीतरागी दिगम्बर मुनि रूप के साक्षात् अवर्णवाद का समर्थन एवं दिगम्बर जैन धर्म के सिद्धान्तों का हनन कर रही है।

इन दिनों भट्टारकवाद ने एक नई दिशा में अपने पांव पसारे हैं। सवस्त्र भट्टारकों के अतिरिक्त अब नग्न भट्टारकों का दल निर्मित हो रहा है। एक नग्न मुनिराज ने अपने आपको भट्टारक घोषित कर ही दिया है। अन्य अनेक मुनि महाराज अघोषित भट्टारक के रूप में कार्य करने लगे हैं। जिन ब्राह्मण भट्टारकों ने पूर्व में दिगम्बर जैन धर्म के वीतरागी देवशास्त्र गुरु की आराधना के वैज्ञानिक भाव पक्ष के स्थान पर ब्राह्मणवाद के भाव विहीन क्रियाकांड और सरागी देवी देवताओं की पूजा आराधना की परंपराओं के बीज बोये थे और परंपराओं के समर्थन में छद्मरूप से जैन साहित्य का सृजन किया था, आज हमारे दिगम्बर मुनि राज ही स्वयं अपनी पूरी शक्ति से उन विकृत मान्यताओं के पोषण और प्रचार-प्रसार में लगे हुए हैं और अपने परमात्म स्वरूप परमेष्ठी पद के गौरव को भुलाकर अपने ही हाथों अपने विश्व कल्याणकारी धर्म का अवर्णवाद कर रहे हैं। स्वाभाविक रूप से प्रत्येक व्यक्ति लौकिक वैभव की प्राप्ति और लौकिक व शारीरिक संकटों से मुक्ति में सुख का अनुभव करता है और सरागी देवी देवताओं की आराधना से उन प्रयोजनों की सिद्धि का लोभ दिए जाने पर वह उस ओर सहज ही उन्मुख हो जाता है। वीतरागता और अध्यात्म तत्व की बात मोह की गहनता के कारण सरलता से स्वीकार्य नहीं हो पाती।

जन साधारण में मुनियों के प्रति श्रद्धा एवं आदर की भावना पाई जाती है। इसी श्रद्धा को भुनाकर कतिपय मुनिराज श्रावकों को धर्म के नाम पर भट्टारकों द्वारा स्थापित परंपराओं में उलझा रहे हैं। मिथ्यात्व पोषण के नए-नए आयाम स्थापित किए जा रहे हैं। आज वीतरागी प्रमुख पूजा आराधना के स्थान पर सरागी देवी-देवताओं की पूजा आराधना एवं अनुष्ठान का अधिक प्रचार हो रहा है। वीतराग धर्म की आराधना के पर्व अब गौण हो रहे हैं और नवरात्री आदि को मुख्यता दी जा रही है। वीतरागता और अध्यात्मपरक साहित्य का स्थान मंत्र-तंत्र की साधना ले रही है। महान परमेष्ठी पद पर प्रतिष्ठित हमारे मुनिराज अब नग्न भट्टारक के रूप में भट्टारक पंथ के प्रचार में संलग्न हो रहे हैं। धार्मिक क्षेत्र में यह प्रत्यक्ष इस कलिकाल का प्रभाव दृष्टिगोचर हो रहा है।

प.पू. आचार्य वर्द्धमान सागर जी के निर्देशानुसार में श्रवण बेलगोल श्री भट्टारक चारूकीर्ति जी से चर्चा करने गया था। तीन दिन दो अढाई घंटे प्रतिदिन चर्चा हुई। भट्टारक जी ने अत्यंत वात्सल्यभाव से चर्चा की। जिनागम के अध्ययन का प्रभाव उनके जीवन और विचारों पर परिलक्षित होता है। उनकी सरलता और निरभिमानता मिलने वाले को प्रभावित करती है। उनकी अनुमति के बिना मैं उनसे हुई चर्चा का विशेष विवरण यहां नहीं दे पा रहा हूँ। किंतु सार रूप में यह कह रहा हूँ कि उनसे सार्थक चर्चा हुई। वे दिगम्बर जैन समाज में संगठन और एकता के पक्षधर हैं। उनका विचार है कि वे चातुर्मास के पश्चात् वे दक्षिण भारत के लगभग १० भट्टारक महोदयों को साथ लेकर प.पू. आचार्य विद्यासागर जी महाराज के दर्शन करने और उनके साथ चर्चा करने आयेंगे। आगम के अनुसार भट्टारक संस्था का स्वरूप निर्धारण किया जाना सभी धर्म श्रद्धालु चाहते हैं। किंतु स्थापित परंपराओं के मोह से मुक्त नहीं हो पाने की समस्या का समाधान कठिन दिखाई देता है।

सम्माननीय पं. नीरज जी की विद्वता, अनुभव और लेखनी का मैं सदैव प्रशंसक रहा हूँ और उनका आदर करता हूँ। दि. जैन समाज उन जैसे विद्वान से सदैव दिशा निर्देश प्राप्त करने का आंकाक्षी है। मैं उनसे उम्र और ज्ञान दोनों में छोटा हूँ। कभी भी किसी भी स्थिति में उनका अविनय करने की मेरी भावना नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राकृतिक चिकित्सा

अनमोल हैं हमारी आँखें

डॉ. वन्दना जैन

प्रकृति प्रदत्त एक अनमोल भेंट हमें प्राप्त हुई है आखों के रुप में, कल्पना कीजिए बिना आँखों के जीवन की। जीवन का सारा आनंद ही समाप्त हो जायेगा। आइये विचार करते हैं आँखों की देखभाल के बारे में, सर्वप्रथम उन कारणों की ओर चलते हैं जिससे हम इन समस्याओं से ग्रस्त होते हैं।

कारण : वंशानुगत कभी-कभी आँखों के रोग माता-पिता से अनुवांशिकी में मिल जाते हैं। मिर्च मसाले के अधिक सेवन से, दूध, दही, घी, फल तथा सलाद न खाने के कारण, धूम्रपान के कारण, उच्च रक्तचाप, मधुमेह के कारण आँख में बाहरी वस्तु गिरने के कारण अथवा चोट लगने के कारण, सिर शोथ अथवा अधिक नजला जुकाम के कारण ऊपरी जबड़े के दांत उखड़ने के कारण।

प्राकृतिक उपचार : प्रतिदिन ठंडे पानी का एनिमा देने से शरीर के अधिकांश विजातीय द्रव्य बाहर निकल जाते हैं। ठंडे पानी का कटि स्नान प्रतिदिन देने से रक्त संचालन उत्तेजित होता है और विजातीय द्रव्यों का निष्कासन भी हो जाता है। आँखों पर रोज ठंडे पानी की आधे घंटे के लिए पट्टी रखें और पेढू और आंखों पर मिट्टी रखें। प्रतिदिन प्रात: त्रिफला के पानी (आई कप) से आंखें डुबाकर आखें खोलें व बंद करें। आंखों पर केले के पत्ते रखकर ८.१५ से ८.३० के मध्य १५-२० मिनिट का सूर्य स्नान लेना हितकर है। इसके बाद ठंडा रीढ स्नान अवश्य लेना चाहिए। बंद आंखों से सूर्य को देखना पांच से दस मिनिट का हितकर है। प्रात: काल नंगे पैर हरी दूब पर आधे घंटे की सैर, टी.वी. देखते समय या पुस्तकें पढ़ते समय बीच-बीच में पलकें झपकाते रहें। चश्मे का उपयोग कम से कम करें।

योगिक क्रियाएँ एवं प्राणायाम : नजला जुखाम दूर करने के लिए जलनेति, रबर नेति, सूत्रनेति तथा धृत नेती करें। सप्ताह में एक दिन कुँजल अवश्य करें। त्राटक या पेन्सिल व्यायाम।

आसन : वज्रासन, योग मुद्रा, शशांक आसन, पश्चिमोत्तानासन, पवन मुक्तासन, शलभाशन, धनुरासन, शवासन, भ्रामरी प्राणायाम लाभदायक है।

भोजन तालिका : पहले तीन दिन हर चार घंटे तक फलों का रस, पानी मिलाकर पानी चाहिए।

प्रात: ६ बजे - नीबू+ पानी + अमृता (गुड़) एक गिलास

प्रात: ७.३० बजे - हरी सब्जियों का एक गिलास रस उसमें हरा धनिया अवश्य हो। गाजर का रस।

दोपहर ४ बजे- मौसम के फल व उनका रस।

शाम ६.०० बजे - एक गिलास हरा जूस +पपीता।

शाम ७ बजे- दोपहर जैसा खाना+ फल (गाजर, टमाटर, पालक आदि)

जब राहत महसूस हो तब, दोपहर व शाम के भोजन में सलाद के साथ उबली सब्जी + चौकर सहित आटे की रोटी+ अंकुरित अन्न भी लेते रहें, सफेद कद्दू (पेठा) की सब्जी विशेष लाभकारी है।

अपथ्य - चाय, पानी, कॉफी, अंडा, माँस, मछली, लाल-मिर्च, तला-भुना भोजन, अधिक नमक।

ग्रन्थ समीक्षा

१. कल्पद्रुम विधान, २. तत्वार्थ सूत्र मोक्षमण्डल विधान ,३. णमोकार महामंत्र विधान

उक्त तीनों विधानों के रचयिता धन्नालाल जैन शास्त्री, केमिकल इंजी. सरल सुबोध एवं हृदयस्पर्शी काव्य रचना में सिद्धहस्त विद्वान हैं। इन विधानों की रचना सरल, सुन्दर काव्यों में भक्ति-भावना से प्रेरित होकर आगमानुसार की गई है। छन्दों की लयवद्धता व शब्दचयन आदि का विशेष आकर्षण उक्त विधानों में पाया जाता है।

उक्त रचनाओं के द्वारा विशुद्ध सनातन जैन दर्शन के अनुरूप पूजन-विधान पद्धति की रिक्तता को धन्नालाल जी ने पूर्ण किया है। अत: वे वधाई के पात्र हैं।

रचनाओं का प्राप्ति स्थान -

धन्नालाल जैन शास्त्री
११८/१७९ कौशलपुरी, कानपुर (उ.प्र.)
(०५१२-२२९७३८४)

जैन साहित्य सदन, दि. जैन लाल मंदिर
(लाल किले के सामने) नई दिल्ली - ६

अमर ग्रंथालय, दि. जैन उदासीन आश्रम,
महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर (म.प्र.)

सम्पादक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिज्ञासा-समाधान

पं. रतन लाल बैनाड़ा

प्रश्नकर्ता - आलोक कुमार शास्त्री

जिज्ञासा- तीर्थंकर प्रभु क्षुधा की पीड़ा होने पर आहार को उठते हैं या अन्य कारण है ?

समाधान- उपरोक्त प्रश्न के समाधान में निम्न प्रसंग विचारणीय है-

१. पद्मपुराण पृष्ठ ५७, चतुर्थपर्व श्लोक नं. १

हिताय जगते कर्तुं, दान धर्मं समुद्यतः ॥१॥

अर्थ - भ. ऋषभदेव जगत के कल्याण के निमित्त दान धर्म की प्रवृत्ति करने के लिये उद्यत हुये।

२. पद्मपुराण पृष्ठ ५८, चतुर्थपर्व श्लोक नं. २१

अथ प्रवर्तनं कृत्वा, पाणिपात्रव्रतस्य सः। शुभ ध्यानं समाविष्टो, भूयोपि विजितेन्द्रियः ॥२॥

अर्थ- अथानंतर इन्द्रियों को जीतने वाले भ. ऋषभदेव, दिगम्बर मुनियों का व्रत कैसा है ? उन्हें किस प्रकार आहार दिया जाता है, इसकी प्रवृत्ति चलाकर पुनः शुभ ध्यान में लीन हो गये।२१।

३.श्री वीरवर्धमान चरिते (ज्ञानपीठ) पृष्ठ १२४, श्लोक २-३

अर्थ- अथानंतर महावीर स्वामी यद्यपि छहमासी उपवास आदि तपों के करने में अतीव समर्थ थे, तो भी अन्य मुनियों को उत्तम चर्या मार्ग बतलाने के लिये, पारणा के दिन धृति और धैर्य से बलशाली, शरीर-भोगादि में अत्यन्त निस्पृह प्रभु ने शरीर स्थिति में बुद्धि की अर्थात् गोचरी के लिये उद्यत हुये। २-३।

४.श्रीआदिपुराण (ज्ञानपीठ) पर्व-२०, श्लोक नं. २-३-४

अर्थ- तब यतियों की चर्या अर्थात् आहार लेने की विधि बतलाने के उद्देश्य से, शरीर की स्थिति के अर्थ, निर्दोष आहार ढूंढने के लिये उनकी इस प्रकार बुद्धि उत्पन्न हुई, वे ऐसा विचार करने लगे। २। कि बड़े दुःख की बात है कि बड़े-बड़े वंशों में उत्पन्न हुये ये नवदीक्षित साधु समीचीन मार्ग का परिज्ञान न होने के कारण, इन क्षुधा आदि परिषहों से शीघ्र भ्रष्ट हो गये। ३। इसलिए अब मोक्ष का मार्ग बतलाने के लिये और सुख पूर्वक मोक्ष की सिद्धि के लिये शरीर की स्थिति के अर्थ आहार लेने की विधि दिखलाता हूँ। ४।

५.महापुराण (ज्ञानपीठ)कवि पुष्पदंत विरचित पृष्ठ १८३, संधि ९

तब भगवान ऋषभदेव सोचने लगे कि में शुद्ध भोजन पाणि रुपी पात्र से खाऊं एवं चर्या का आचरण संसार को बताऊं। यदि मैं किसी प्रकार इसी तरह रहता हूँ और भोजन नहीं करता हूँ तो जिस प्रकार ये ४००० साधु नष्ट हो गये उसी प्रकार दूसरा मुनि समूह भी नष्ट हो जायेगा। तब वे योग छोड़कर विहार करते हैं।

६. हरिवंशपुराण (ज्ञानपीठ) सर्ग ९, पृष्ठ १७७ श्लोक नं. १३५-१४०

अर्थ - उन भगवान ऋषभदेव को ६ माह से प्रतिमा योग धारण करने पर भी, आहार के बिना कुछ भी आकुलता नहीं थी परन्तु अन्न भी धर्म का साधन है, अतः इस भरत क्षेत्र में, शासन की स्थिरता के लिये, मैं आहार के इच्छुक मनुष्यों को निर्दोष आहार ग्रहण करने की विधि दिखलाता हूँ। ऐसा विचारकर, यद्यपि भगवान् क्षुधादि के दूर करने में स्वयं समर्थ थे, तो भी परोपकार के अर्थ उन्होंने गोचरवृत्ति से अन्न ग्रहण करने की इच्छा की।

उपरोक्त सभी प्रसंगों से यह स्पष्ट होता है कि तीर्थंकर प्रभु, क्षुधा की वेदना के निवारणार्थ चर्या नहीं करके, भव्यों को दान विधि बताने के लिये चर्या करते हैं।

प्रश्नकर्ता - सौ. ज्योति लोहाड़े, कोपरगांव

जिज्ञासा- एकत्ववितर्क अविचार शुक्ल ध्यान प्रतिपाती है या अप्रतिपाती ?

समाधान - कौन सा शुक्ल ध्यान किस गुणस्थान में होता है, इस संबंध में आचार्य की दो परम्पराएँ आगम में वर्णित हैं। प्रथम परम्परा के अनुसार वृहद् द्रव्य संग्रह गाथा - ४८ की टीका में इस प्रकार कहा है- 'तच्चोपशम श्रेणिविवक्षायाम पूर्वोपशमका निवृत्युपशमक सूक्ष्मसाम्परायोपशमकोपशान्त कषाय पर्यन्तगुणस्थानचतुष्टयेभवति। क्षपकश्रेण्यांपुनरपूर्वकरणक्षपका निवृत्तिकरणक्षपकसूक्ष्मसाम्प राय क्षपकाभिधानगुणस्थानत्रये चेति प्रथमं शुक्लध्यानं व्याख्यातम्।'

अर्थ- यह प्रथम शुक्लध्यान उपशम श्रेणी की विवक्षा में अपूर्वकरण उपशमक, अनिवृत्तिकरण उपशमक, सूक्ष्मसांपराय उपशमक और उपशान्त कषाय इन चार गुणस्थानों में होता है और क्षपक श्रेणी की विवक्षा में अपूर्वकरण क्षपक, अनिवृत्तिकरण क्षपक और सूक्ष्मसांपराय क्षपक, इन तीन गुणस्थानों में होता है। इस प्रकार प्रथम शुक्लध्यान का व्याख्यान हुआ। 'यत्तदेकत्ववितर्कावीचारसंज्ञं क्षीणकषाय गुणस्थान सभवं द्वितीय शुक्लध्यानं भण्यते।

अर्थ- वह क्षीणकषाय गुणस्थान में संभव' 'एकत्ववितर्क अवीचार' नामक दूसरा शुक्लध्यान कहलाता है।

भावार्थ - प्रथम शुक्ल ध्यान ८ वें से ११ वें गुणस्थान तक तथा द्वितीय शुक्लध्यान १२ वें गुणस्थान में होता है। भगवती आराधना, सर्वार्थसिद्धि, ज्ञानार्णव, कार्तिकेयानुप्रेक्षा आदि ग्रन्थों में भी इस परम्परा का अनुसरण किया गया है।

२. द्वितीय परम्परा धवलाकार आ. वीरसेन स्वामी की है। जिसके अनुसार धवला पु. १३ पृष्ठ ७४ पर ऐसा कहा है-

'धम्मज्झाणं सकसाएसु चेव होदि त्ति कधं णव्वदे? असंजदसम्मदिट्ठि संजदासंजद पमत्तसंजद अप्पमत्तसंजद अपुव्वसंजदअणियट्ठिसंजद सुहमसांपराइय खवणोवसामएसु धम्मज्झाणस्स पवुत्ती होदित्ति जिणोवएसादो।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ - धर्मध्यान कषायसहित जीवों के होता है यह किस प्रमाण से जाना जाता है? असंयत सम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत क्षपक और उपशामक, अपूर्वकरणसंयत क्षपक और उपशामक, अनिवृत्तिकरणसंयत क्षपक और उपशामक तथा सूक्ष्मसांपराय संयत जीवों के धर्मध्यान की प्रवृत्ति होती है, ऐसा जिनदेव का उपदेश है। इससे जाना जाता है कि धर्मध्यान कषाय सहित चतुर्थ गुणस्थान से दसवें गुणस्थान तक के जीवों के होता है। आ. वीरसेन महाराज ने प्रथम शुक्ल ध्यान ११ वें तथा १२ वें दोनों गुणस्थानों में तथा द्वितीय शुक्लध्यान भी ११ वें तथा १२ वें दोनों गुणस्थानों में माना है। अर्थात् उपशम श्रेणी में ११ वें गुणस्थान के प्रारम्भ में प्रथम शुक्ल ध्यान और बाद में द्वितीय शुक्लध्यान होता है तथा क्षपकश्रेणी में १२ वें गुणस्थान के प्रारंभ में प्रथम शुक्ल ध्यान और बाद में द्वितीय शुक्ल ध्यान होता है। श्री धवला पु. १३, पृष्ठ ८१ पर कहा गया है 'उवसंतकसायम्मि एयत्तविदक्काविचारं।'

अर्थ- उपशांत कषाय गुणस्थान में एकत्ववितर्क अविचार ध्यान होता है। इसी पृष्ठ पर आगे कहा है 'ण च खीणकसायद्धाए सव्वत्थ एयत्तविदक्काविचारज्झाणमेव अर्थ-क्षीणकषाय गुणस्थान के काल में सर्वत्र एकत्ववितर्क अविचार ध्यान ही होता है, ऐसा कोई नियम नहीं है।' अर्थात् १२ वें गुणस्थान में पृथकत्व वितर्क शुक्लध्यान भी होता है'

भावार्थ - चौथे से दशमें गुणस्थान तक धर्मध्यान होता है। ११ वें तथा १२ वें दोनों गुणस्थानों में पृथकत्व वितर्क विचार तथा एकत्व वितर्क अविचार दोनों शुक्ल ध्यान होते हैं।

अब प्रश्नकर्ता के प्रश्न पर विचार करते हैं उपरोक्त दोनों परम्पराओं के अनुसार पृथकत्व वितर्क वीचार नामक प्रथम शुक्ल ध्यान प्रतिपाति माना गया है। परन्तु द्वितीय शुक्ल ध्यान को प्रथम परम्परा अप्रतिपाति मानती है क्योंकि वह मात्र बारहवें गुणस्थान में होता है और वे मुनिराज वहाँ से नीचे नहीं उतरते। लेकिन द्वितीय परम्परा के अनुसार एकत्व वितर्क अविचार शुक्लध्यान भी प्रतिपाति कहा गया है क्योंकि द्वितीय शुक्लध्यान ११वें गुणस्थान में भी माना है और यहाँ से मुनिराज अवश्य ही नीचे उतरते हैं।

एक अन्य विषय भी विचारणीय है कि आचार्यों ने तृतीय शुक्ल ध्यान सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती के साथ ही अप्रतिपाती विशेषण जोड़ा है, जो इस बात का परिचायक है कि इससे प्रथम के दोनों शुक्ल ध्यान प्रतिपाति हैं।

इस प्रकार द्वितीय शुक्लध्यान के प्रतिपाति और अप्रतिपातिपने का दोनों परम्पराओं से विचार करना चाहिए।

प्रश्नकर्ता - कु. कंचन जैन, अलवर

जिज्ञासा - लेश्या तो कषाय और योग सहित होती है। लेकिन सयोग केवली के कषाय नहीं होती फिर उनके शुक्ल लेश्या किस अपेक्षा से कही गई है?

समाधान- उपरोक्त प्रश्न के संबंध में आ. वीरसेन स्वामी ने श्री धवला पु. १, पृष्ठ ३८६ पर इस प्रकार कहा है-

'लेश्या इति किमुक्तं भवति?' कर्मस्कन्धैरात्मानं लिम्पतीति लेश्या। कषायानुरंजितैव योगप्रवृत्तिर्लेश्येति नात्र परिगृह्यते सयोगकेवलिनोऽलेश्यत्वापत्तेः। अस्तु चेन्न, 'शुक्ललेश्यः सयोगकेवली' इति वचनव्याघातात्।

अर्थ- 'लेश्या' इस शब्द से क्या कहा जाता है? जो कर्मस्कन्धों से आत्मा को लिप्त करती है उसे लेश्या कहते हैं। यहाँ पर 'कषाय से अनुरंजित योगप्रवृत्ति को लेश्या कहते हैं' यह अर्थ नहीं गृहण करना चाहिए, क्योंकि इस अर्थ का ग्रहण करने पर सयोगकेवली के लेश्या रहितपने की आपत्ति प्राप्त होती है। यदि यह कहा जाए कि सयोगकेवली को लेश्यारहित मान लिया जाये तो क्या हानि है? ऐसा नहीं माना जा सकता, क्योंकि ऐसा मान लेने पर 'सयोगकेवली के शुक्ल लेश्या पाई जाती है, इस वचन का व्याघात हो जाएगा।' इसलिए जो कर्मस्कन्धों से आत्मा को लिप्त करती है वह लेश्या है। श्री धवला पुस्तक १, पृष्ठ १५० पर आ. महाराज पुनः लिखते हैं-

'कषायानुविद्धायोगप्रवृत्तिर्लेश्येति सिद्धम। ततोत्र वीतरागीणां योगी लेश्येति न प्रत्यवस्थेयं तन्त्रत्वाद्योगस्य न कषायस्तन्त्रं विशेषणत्व तस्तस्य प्रधान्याभावात्।'

अर्थ- 'कषायानुविद्ध योगप्रवृत्ति को लेश्या कहते हैं' ऐसा सिद्ध हो जाने पर ग्यारहवें आदि गुणस्थानवर्ती वीतरागियों के केवल योग को लेश्या नहीं कह सकते हैं ऐसा निश्चय नहीं कर लेना चाहिए, क्योंकि लेश्या में योग की प्रधानता है, कषाय प्रधान नहीं है, कारण कि वह योग प्रवृत्ति का विशेषण है, अतएव उसकी कषाय की प्रधानता नहीं हो सकती है।'

गोम्मटसार जीवकाण्ड गाथा ४८९ में इस प्रकार कहा है-

लिंपइ अप्पीकीरइ, एदीए णियअपुण्या पुण्णं च।
जीवोत्ति होदि लेस्सा लेस्सागुणजाणयक्खादा॥४८९।

अर्थ - जिसके द्वारा जीव पुण्य और पाप से अपने को लिप्त करता है, उनके अधीन करता है, उसको लेश्या कहते हैं, ऐसा लेश्या के स्वरुप को जानने वाले गणधर देव आदि ने कहा है।

उपरोक्त प्रमाणों के अनुसार लेश्या की परिभाषा में योग की प्रधानता है, कषाय की नहीं। इसी कारण १३ वें गुणस्थान में योग प्रवृत्ति होने से शुक्ल लेश्या कही गई है।

प्रश्नकर्ता - श्री सविता जैन, नंदुरवार

जिज्ञासा - लोक विनिश्चय ग्रन्थ के कर्ता कौन हैं, ?

समाधान- लोकविनिश्चय ग्रन्थ के उद्धरण तिलोयपण्णत्ति व अन्य ग्रन्थों में पाए जाते हैं, परन्तु यह ग्रन्थ वर्तमान में उपलब्ध नहीं है। इस ग्रन्थ के नाम से यह तो स्पष्ट होता है कि इस ग्रन्थ में तीन लोक का वर्णन किया गया होगा। परन्तु न तो ग्रन्थ ही उपलब्ध है और न इसके रचियता का नाम ही ज्ञात है। विद्वानों ने इस ग्रंथ का रचनाकाल ईसा की प्रथम शताब्दी के लगभग माना है।

१/२०५, प्रोफेसर्स कॉलोनी,
आगरा - २८२ ००२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाचार

भुवनेश्वर के हिंदू मंदिरों में जैन चिह्न

उदयगिरि - खंडगिरि की प्राचीन गुफाओं पर हो रहे अवैध अतिक्रमणों को हटाने के लिए अब जागरूकता बढ़ रही है यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हुई। आज से करीबन ४ वर्ष पूर्व मैंने अपने परिवार सहित इस सिद्धक्षेत्र की यात्रा की थी। उस समय इस क्षेत्र की स्थिति का अवलोकन करने के पश्चात् मैंने एक लेख 'क्या है प्राचीन उदयगिरि- खंडगिरि गुफाओं का भविष्य?' इस शीर्षक से लिखा था। यह लेख महासमिति पत्रिका, अर्हत् वचन, प्राचीन तीर्थ जीर्णोद्धार पत्रिका में तथा अन्य पत्र/पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ।

उदयगिरि - खंडगिरि गुफाओं की यात्रा के दौरान मैंने भुवनेश्वर के कुछ मुख्य हिंदु मंदिरों को भी देखा। इन्हीं में से एक विशाल मंदिर समूह है 'लिंगराज मंदिर'। इस मंदिर का बारीकी से निरीक्षण करने के पश्चात् जब शिखर की ओर ध्यान गया तो आश्चर्य का ठिकाना न रहा। मुख्य मंदिर के शिखर पर एक जिन प्रतिमा पद्मासन मुद्रा में स्थित है। इस प्रतिमा की ऊंचाई लगभग २ फुट होगी।

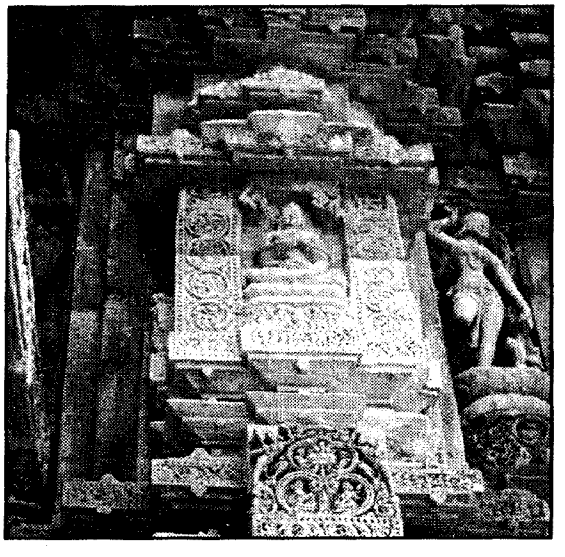

ध्यान से देखने पर पता चलता है कि इस प्रतिमा के ऊपर अलग से २ और हाथ (जिनक रंग भी अलग है) लगाने की कोशिश की गई है। ऐसा क्यों किया गया, कब किया गया- यह सोचने की बात है। इसी प्रकार भुवनेश्वर के ही एक अन्य 'गौरी मंदिर' की बाहरी दीवारों पर कुछ छोटी-छोटी जिन प्रतिमाएँ (करीबन २.५ इंच की) उत्कीर्ण हैं।

हम जानते हैं कि सांप्रदायिक विद्वेष के चलते कई जैन मंदिरों को हिंदू मंदिरों में परिवर्तित कर दिया गया था। चूंकि उड़ीसा प्राचीन कलिंग का वह स्थान है जहाँ किसी समय जैन सम्राट महामेघवाहन खारवेल का साम्राज्य था, संभव है कि ये मंदिर भी कभी जैन मंदिर रहे हों।

उदयगिरि - खंडगिरि की गुफाओं की स्थिति को देखते हुए तथा भुवनेश्वर के मंदिरों के संबंध में मेरे निम्न सुझाव हैं-

१. भुवनेश्वर के लिंगराज मंदिर, गौरी मंदिर तथा अन्य मंदिरों पर शोध की आवश्यकता है जिससे इन मंदिरों का प्राचीन इतिहास पता लगे तथा यहाँ अन्य जैन चिह्न खोजे जा सकें।

२. उदयगिरि - खंडगिरि की गुफाओं के प्रति समाज में जागरूकता न होने का कारण इस प्राचीन तथा ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण सिद्ध क्षेत्र के विषय में जानकारी का न होना है। इसलिए ज्यादा से ज्यादा कार्यक्रम, विचार गोष्ठियाँ तथा सम्मेलन सम्राट खारवेल तथा उदयगिरि-खंडगिरि की गुफाओं के विषय पर होने चाहिए।

३. सामाजिक पत्र/पत्रिकाओं में इस क्षेत्र की वर्तमान स्थिति अधिकाधिक प्रसारित होनी चाहिए।

४. इस क्षेत्र की यात्रा करने के लिए लोगों को प्रेरित करें।

५. इस स्थान के प्राचीन वैभव को देखते हुए, यह कोशिश की जानी चाहिए कि यह स्थान "World Heritage Sites" में आ जाए। ऐसा होने पर इस क्षेत्र की सुरक्षा तथा संवर्द्धन भली-भांति हो सकेगा।

आशा है प्रबुद्धजन, नेतृत्ववर्ग तथा शोधार्थी उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में लाकर समुचित कार्यवाही करेंगे।

गौरव छाबड़ा
जयपुर (राजस्थान)

कर्नाटक राज्य में श्वेताम्बर जैनों को भी अल्पसंख्यक मान्यता

देश के विभिन्न राज्यों बिहार, छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, राजस्थान एवं उत्तरांचल में समग्र जैन समाज को धार्मिक अल्पसंख्यक मान्यता प्राप्त हो चुकी है। लेकिन कर्नाटक राज्य में केवल दिगम्बर जैन समाज को ही अल्पसंख्यक मान्यता प्राप्त थी। महासभा कर्नाटक में समग्र जैन समाज को अल्पसंख्यक मान्यता प्रदान करने के लिए प्रभावी प्रयास कर रही थी। कर्नाटक सरकार ने महासभा के प्रस्ताव को मानकर कर्नाटक राज्य में श्वेताम्बर आम्नाय को भी धार्मिक अल्पसंख्यक मान्यता देने की अधिसूचना जारी कर दी है। कर्नाटक एवं देश के समग्र श्वेताम्बर समाज ने इसका हार्दिक स्वागत किया है। अत: सात राज्यों में समग्र जैन समाज अल्पसंख्यक घोषित हो चुका है।

अन्य राज्यों में भी समग्र जैन समाज को अल्पसंख्यक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घोषित करवाने के लए प्रयास जारी हैं। कई राज्यों के राज्य अल्पसंख्यक आयोगों ने जैन समाज को धार्मिक अल्पसंख्यक घोषित करने की राज्य सरकार से संतुति की है। कुछ राज्यों में चुनाव हो जाने के पश्चात् सफलता मिलने के आसार हैं। पाण्डिचेरी आदि कुछ केन्द्र शासित राज्यों ने केन्द्र सरकार से जैन समाज को अल्पसंख्यक घोषित करने के लिए अनुमोदन माँगा है। हर्ष का विषय है कि इसमें सम्पूर्ण जैन समाज का सहयोग मिल रहा है।

डॉ. विमल जैन
ऐशबाग, लखनऊ

अहिंसा इन्टरनेशनल पुरस्कारों हेतु नाम आमंत्रित

प्रतिवर्षानुसार अहिंसा इन्टरनेशनल द्वारा वर्ष २००३ के निम्न पुरस्कारों के लिये प्रस्ताव आमंत्रित हैं।

१. अहिंसा इन्टरनेशनल डिप्टीमल आदीश्वरलाल जैन साहित्य पुरस्कार (राशि ३१,000/-) जैन साहित्य के विद्वान को उनके हिन्दी एवं अंग्रेजी के समग्र साहित्य अथवा एक कृति की श्रेष्ठता के आधार पर।

लिखित पुस्तकों की सूची तथा २ श्रेष्ठ पुस्तकें भेजें।

२. अहिंसा इन्टरनेशनल भगवानदास शोभालाल जैन शाकाहार तथा जीवदया एवं रक्षा पुरस्कार (राशि २१,000/-) रचनात्मक जैन पत्रकारिता की श्रेष्ठता के आधार पर।

नाम का सुझाव स्वयं लेखक/कार्यकर्ता संस्था अथवा अन्य व्यक्ति द्वारा १० फरवरी २००४ तक निम्न पते पर लेखक/कार्यकर्ता/पत्रकार के पूरे नाम व पते, जीवन परिचय संबंधित क्षेत्र में कार्य विवरण सहित व पासपोर्ट आकार के २ फोटो सहित आमंत्रित हैं। पुरस्कार नई दिल्ली में लगभग अप्रैल २००४ में भव्य समारोह में भेंट किये जायेंगे।

प्रदीप कुमार जैन, सचिव
दिल्ली - 110 006

पंचम आत्म-साधना शिक्षणशिविर सानन्द सम्पन्न

षष्ठम शिविर २५ अप्रैल से २ मई २००४

परमपावन तीर्थराज सम्मेदशिखर जी के पादमूल, ईसरी बाजार स्थित पूज्य क्षुल्लक १०५ श्री गणेश प्रसाद जी वर्णी एवं श्री जिनेन्द्र जी वर्णी की साधना एवं समाधि स्थली श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन शांति निकेतन उदासीन आश्रम के सुरम्य वातावरण में प.पू. आचार्य १०८ श्री विद्यासागर जी महाराज के आशीर्वाद से सिद्धान्त रत्न न्यायरत्न बा.ब्र. श्री पवन भैया एवं श्री कमल भैया एवं अन्य ब्रह्मचारीगणों के सान्निध्य में पंचम आत्म साधना शिक्षण शिविर का आयोजन दिनांक ३० नवम्बर से १४ दिसम्बर तक हुआ जिसके प्राचार्य थे सुप्रसिद्ध विद्वान पं. मूलचन्द्र जी लुहाड़िया (किशनगढ़) राजस्थान।

बा. ब्र. श्री पवन भैया द्वारा दिन में दो बार आचार्य कुलभद्राचार्य स्वामी विरचित 'सार समुच्चय' का एवं संध्या आ. पूज्यपाद स्वामी द्वारा विरचित 'सर्वार्थ सिद्धि' का अध्ययन करवाया गया। बा.ब्र. कमल भैया ने दोपहर में 'स्तुति निकुंज' का लयबद्ध पाठ कराया। पं. मूलचन्द जी लुहाड़िया द्वारा आचार्य पूज्यपाद स्वामी विरचित 'समाधितंत्र शतक' का अध्ययन करवाया गया। बा. ब्र. श्री चक्रेश जी ने छोट-छोटे बच्चों को बाल बोध भाग १, २ एवं ३ का पाठ कराया। भाग्योदय, सागर से पधारे बा.ब्र. डॉ. श्री नवीन भैया द्वारा प्रातः पांच बजे से ध्यान एवं योग का शिक्षण अभ्यास करवाया गया। इस शिविर में भाग लेने काफी संख्या में बाहर से शिविरार्थी पधारे थे जिनमें पटना, जयपुर, उदयपुर, कोटा, जबलपुर, सागर, शाजापुर, भोपाल, जगाधरी, औरंगाबाद, नागपुर, मुम्बई, सूरत, लालगोला, अड़ंगाबाद, धुलियान, कोलकाता आदि एवं स्थानीय इसरी बाजार के लोग प्रमुख थे। इनमें शिविर के प्रति काफी उत्साह था।

इस अवसर पर शिविर प्राचार्य पं. मूलचन्द जी लुहाड़िया का सम्मान आश्रम के मंत्री श्री शांति लाल जी सेठी (पटना), सहायक मंत्री श्री कैलाश चन्द जैन (इसरी बाजार) एवं ट्रस्टी संयोजक श्री नरेश कुमार जैन (पटना) ने किया। त्यागी व्रतियों का सम्मान श्रीफल एवं आश्रम की स्मारिका भेंट कर किया गया। पारसनाथ रेलवे स्टेशन के पूर्व प्रबन्धक श्री अभय कुमार जैन ने घोषणा की कि पारसनाथ स्टेशन पर भगवान पार्श्वनाथ के विशाल एवं भव्य चित्र को लगाने की स्वीकृति रेल प्रशासन द्वारा मिल गई है जिसका स्वागत करतल ध्वनि से किया गया।

आश्रम के संयोजक श्री हरिप्रसाद जी पहाड़िया (कतरासगढ़) ने आश्रम की प्रगति की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया एवं बाहर से पधारे लोगों के उत्साह को देखते हुये षष्ठम शिविर (दिनांक २५ अप्रैल से २ मई २००४) की घोषणा की एवं लोगों से अधिक से अधिक संख्या में भाग लेने को आमंत्रित किया। मंच संचालन श्री सुरेश कुमार जैन (इसरी बाजार) एवं श्री रतनलाल जैन नृपत्या (जयपुर) ने किया।

शांति लाल जैन, मंत्री
इसरी बाजार

'बुन्देल खण्ड के जैन तीर्थ' ग्रन्थ का म.प्र. के मुख्य मंत्री द्वारा लोकार्पण

भोपाल, नव वर्ष के शुभारंभ पर प्रसिद्ध हिन्दी कवि श्री कैलाश मड़बैया की नवीनतम कृति 'बुन्देलखण्ड के जैन तीर्थ' का लोकार्पण म.प्र. की मुख्यमंत्री सुश्री उमाभारती द्वारा एक भव्य समारोह में किया गया। इस अवसर पर उमा भारती ने लेखक श्री मड़बैया जी का सतत उत्कृष्ट सृजन के लिये साल और श्रीफल से सम्मान किया। जैन समाज के प्रतिष्ठित पदाधिकारियों और बुन्देलखण्ड के प्रमुख साहित्यकारों ने भी मुख्यमंत्री जी का प्रथम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

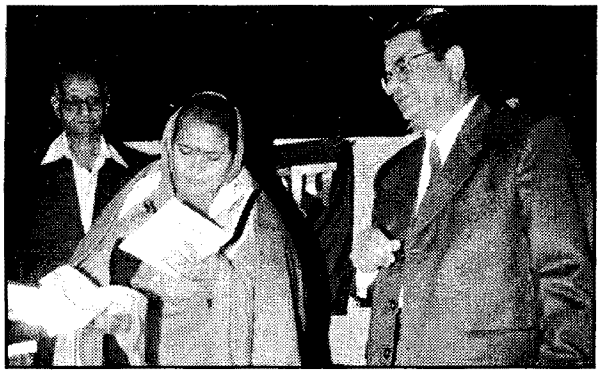

बार बुन्देलखण्ड क्षेत्र से किसी राजनीतिज्ञ का मुख्यमंत्री बनने पर अभिनंदन किया।

दूसरे चरण में कवि कैलाश मड़बैया का इसी अवसर पर षष्टि समारोह भी राजधानी भोपाल की साहित्यिक सांस्कृतिक संस्थाओं ने गरिमापूर्ण समारोह में सम्पन्न किया।

ब्राह्मी लिपि एवं पाण्डुलिपि प्रशिक्षण शिविर सानंद सम्पन्न

श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान सांगानेर (जयपुर) द्वारा संचालित आचार्य ज्ञानसागर छात्रावास में दिनांक २२ से २७ दिसम्बर तक ब्राह्मीलिपि प्रशिक्षण शिविर संस्थान के उपअधिष्ठाता श्रीराजमल जी बेगस्या एवं संस्थान के निर्देशक डॉ. श्री शीतलचन्द जी एवं ज्ञानसागर ग्रन्थमाला के सम्पादक ब्र. भरत भैया के निर्देशन में शिविर सम्पन्न हुआ, जिस लिपि का ज्ञान भगवान ऋषभदेव ने अपनी पुत्री ब्राह्मी को दिया था, उसी विधा का ज्ञान बनारस से पधारी डॉ. पुष्पा जैन ने समस्त विद्यार्थियों को दिया। पाण्डुलिपि के विषय में ज्ञान कराने के लिये डॉ. बुद्धिप्रकाश जी भास्कर भी पधारे।

संस्थान के अधीक्षक सुकान्त जैन छपारा, बसन्तलाल जैन, मनोज जैन घुबारा ने अपना महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया।

महावीर प्रसाद पहाडिया, मंत्री

म.प्र. में नौ जैन विधायक चुने गये, दो को मंत्री पद

सतना। मध्यप्रदेश विधान सभा के १ दिसम्बर २००३ में हुये चुनावों में नौ जैन विधायक चुने गये हैं। इनमें से दो विधायक श्री राघवजी साँवला एवं श्रीमती अलका जैन को मंत्री मण्डल में भी शामिल किया गया है।

मध्यप्रदेश के विदिशा जिले की शमशाबाद सीट से श्री राघवजी साँवला २२३४१ मतों से विजयी हुये हैं। इन्हें नवगठित मध्यप्रदेश मंत्रिमण्डल में वित्त एवं योजना मंत्री बनाया गया है। श्री राघवजी पूर्व में एक बार विधायक, दो बार लोक सभा सदस्य तथा राज्य सभा सदस्य रह चुके हैं।

प्रदेश के दमोह जिले की दमोह विधान सभा सीट से श्री जयन्त मलैया १२३२१ मतों से विजयी होकर पुन: विधायक बने हैं। वे पाँचवी बार विधायक का चुनाव जीते हैं और वरिष्ठ विधायक हैं। पूर्व में सन् १९९० से १९९२ तक वे आवास एवं पर्यावरण मंत्री रह चुके हैं और हाल ही में उन्हें भा.ज.पा. विधायक दल का मुख्य सचेतक नियुक्ति किया गया है। मध्य प्रदेश मंत्री मण्डल के संभावित विस्तार में उनका नाम सबसे ऊपर है।

श्री हिम्मत कोठारी छठवीं बार विधायक बने हैं। वे रतलाम विधान सभा क्षेत्र से ३५९३ मतों से विजयी हुये हैं। पूर्व में सन १९९२ में श्री सुन्दर लाल पटवा के मंत्रीमण्डल में श्री कोठारी लोक निर्माण विभाग के मंत्री रह चुके हैं।

सागर विधान सभा क्षेत्र से श्रीमती सुधा जैन एडवोकेट ८५४२ मतों से विजयी होकर पुन: विधायक बनी हैं, वे तीसरी बार विधायक पद पर चुनी गई हैं। पिछली विधान सभा में विपक्ष में रहते हुये भी उन्होंने अपने क्षेत्र की समस्याओं को जोरदार ढंग से उठाया था।

श्री नरेश दिवाकर सिवनी विधान सभा क्षेत्र से लगातार दूसरी बार विधायक चुने गये हैं। वे १५३५४ मतों से विजयी हुये हैं। श्री दिवाकर महाविद्यालय में अध्यापन तथा प्लाईवुड फैक्ट्री का संचालन कर चुके हैं।

उज्जैन उत्तर विधान सभा क्षेत्र से श्री पारस जैन १६५३७ मतों से विजयी होकर विधायक बने हैं। पूर्व में भी वे दो बार विधायक रह चुके हैं।

कटनी शहर की विधान सभा सीट मुड़वारा से श्रीमती अलका जैन एडवोकेट पहली बार विधायक बनी हैं। वे ११४५० मतों से विजयी रही हैं। राजस्थान के पूर्व राज्यपाल एवं वरिष्ठ विधिवेत्ता स्व. निर्मल चन्द्र जैन की वे सुपुत्री हैं। म.प्र. की मुख्य मंत्री सुश्री उमाभारती ने अपने प्रथम मंत्रिमण्डल में श्रीमती अलका जैन को स्कूली एवं उच्च शिक्षा राज्यमंत्री बनाया है।

जबलपुर सेन्ट्रल विधान सभा क्षेत्र से श्री शरद जैन विधायक बने हैं। वे २३५४ मतों से विजयी रहे हैं और पहली बार निर्वाचित हुये हैं।

नीमच जिले की जावद विधान सभा सीट से श्री ओम प्रकाश सखलेचा विजयी रहे हैं। उन्होंने अपने निकटतम प्रतिद्वन्दी को २६६२५ मतों के विशाल अन्तर से पराजित किया है।

उपर्युक्त निर्वाचित जैन विधायकों में से श्री जयन्त मलैया, श्रीमती सुधा जैन, श्रीमती अलका जैन, श्री नरेश दिवाकर और श्री शरद जैन दिगम्बर जैन हैं। अन्य ४ विधायक श्री राघवजी सॉवला, श्री हिम्मत कोठारी, श्री पारस जैन, श्री ओमप्रकाश सखलेचा श्वेताम्बर जैन हैं। सभी नौ जैन विधायक भा.ज.पा. के हैं। मध्य प्रदेश के सागर, दमोह, जबलपुर और कटनी जिलों में दिगम्बर जैन धर्मावलम्बियों की बहुतायत है और प्रसन्नता की बात है कि इन सभी जिलों में एक-एक जैन विधायक निर्वाचित हुये हैं।

सुधीर जैन, सतना (म.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिस दिन भक्त आत्मा की शरण में जाऐगा वह संत बन जायेगा

मन्दसौर- परम पूज्य मुनिपुंगव सुधासागर जी महाराज पूज्य क्षुल्लक धैर्यसागर जी महाराज एवं पूज्य क्षुल्लक श्री गम्भीर सागर जी महाराज राजस्थान के केकड़ी में चातुर्मास सम्पन्न कर विभिन्न स्थानों पर धर्म प्रभावना करते हुए मन्दसौर पधारे जहाँ जैन समाज के सैकड़ों नर-नारियों ने मुनि संघ की भव्य अगवानी कर नगर प्रवेश कराया।

यहाँ एक विशाल प्रवचन सभा को सम्बोधित करते हुए पूज्य मुनिपुंगव सुधासागर जी महाराज ने कहा कि परमात्मा हमारे लिए दिशा निर्देश देता है। जिस दिन भक्त आत्मा की शरण में चला जायेगा वह संत बन जायेगा और मुक्ति प्राप्त करेगा। आपने बताया कि आज हर व्यक्ति परमात्मा में लीन है, हम परमात्मा के लिए नहीं, परमात्मा हमारे लिए है, ऐसा भाव हमारे मन में जाग्रत होना चाहिए। परमात्मा को साधन बनाकर परमात्मा बनने की कोशिश करें, परमात्मा के दरबार में जब कुछ प्रसाद चढ़ाकर कुछ वापस अपने साथ ले आना व्यापार व बनियापन का प्रतीक है, जबकि जैन धर्म में सब कुछ दरबार में अर्पण कर दिया जाता है, कुछ लाया नहीं जाता, ईश्वर को सब कुछ देते चलो वो तुम्हें पुनः मिलता जायेगा।

विलासमय जीवन छोड़ने की प्रेरणा देते हुए मुनि श्री ने कहा कि जिस प्रकार संत सब कुछ कष्टों को सहकर अपना जीवन सुधारते हैं। आगे अनंत सुख उन्हें प्राप्त होते हैं जबकि इसके विपरीत मनुष्य जो जीवन में सब प्रकार के दुःख भोगता है वह आगे चलकर नरक में कष्ट ही पाता है, इसी प्रकार सब कुछ ईश्वर को अर्पण करते चलें कुछ साथ लाने की भावना न रखें तभी जीवन सफल होगा। मंदिर एक विद्यालय है जहाँ बिना पैसे खर्च किए बहुत कुछ सीखने को मिलता है और आमतौर पर विद्यालयों में पैसा देकर शिक्षा प्राप्त की जाती है और भावना यह रहती है कि मैं पढ़ लिखकर खूब पैसा कमाऊँ।

हिंसा की निंदा करते हुए पूज्य मुनिश्री ने कहा कि आज देव, शास्त्र, गुरु को झुंठलाया जा रहा है। भगवान महावीर ने वाणी में कहा 'जियो और जीने दो' लेकिन आज भाई-भाई को मारने पर तुला हुआ है। गालियों और अपशब्दों का भरपूर इस्तेमाल किया जा रहा है। दुश्मनों की तादाद बढ़ रही है। आपसे तो शेर, गाय अच्छे, जिन्होंने महावीर की वाणी को सार्थक किया। दुश्मनी करना, गालियाँ देना, क्रोध करना छोड़ दोगे तो भवसागर से पार हो जाओगे। मंगलाचरण सुरेश जैन ने किया। विनयांजली श्रीमती पद्मा जैन ने प्रस्तुत की। संचालन पवन कुमार अजमेरा ने किया।

भक्तामर स्तोत्र को तीन वर्ष पूरे हुए

सनावद- श्री सुपार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर में डॉ. नरेन्द्र जैन 'भारती' की प्रेरणा पर प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशी के दिन आयोजित भक्तामर स्तोत्र के सामूहिक पाठ को तीन वर्ष पूर्ण होने पर मंच के सदस्यों ने खुशी जाहिर करते हुए इसे निरन्तर आगे आयोजित करते रहने का निश्चय किया। पाठ में मुख्यतः गजेन्द्र बाकलीवाल, संतोष बाकलीवाल, राजेश चौधरी, सत्येन्द्र जैन, पवन जैन, डॉ. नरेन्द्र जैन, कमलेश जैन, संगीता बाकलीवाल, संध्या जैन, कल्पना जैन, मंजुला भूंच आदि का बराबर सहयोग मिल रहा है।

डॉ. नरेन्द्र जैन 'भारती'
सनावद (म.प्र.)

भारतवर्षीय श्रमण संस्कृति परीक्षा बोर्ड का भव्य उद्घाटन

परम पूज्य सन्त शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के परमशिष्य मुनिपुंगव श्री सुधासागर जी महाराज एवं संघस्थ क्षुल्लक श्री गम्भीरसागरजी, क्षुल्लक श्री धैर्यसागर जी के पावन सान्निध्य में श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान सांगानेर जयपुर के अन्तर्गत प्रारम्भ किये गये भारतवर्षीय श्रमण संस्कृति परीक्षाबोर्ड का भव्य उद्घाटन किशनगढ़ अजमेर के प्रसिद्ध उद्योगपति, परमगुरु भक्त, सम्मानीय श्री निहालचंद जी पहाड़िया एवं समाचार जगत के प्रधान सम्पादक श्री राजेन्द्र जी गोधा ने सहस्रों श्रावकों की उपस्थिति में मुनिश्री के आशीर्वाद के साथ उद्घाटन किया गया।

उक्त परीक्षाबोर्ड के अन्तर्गत कोटा में संचालित हो रही १६ पाठशालाओं का एकीकरण कर उसका नाम 'श्रमण संस्कृति ज्ञान मण्डल' रखा गया, ये सभी पाठशाला उक्त परीक्षाबोर्ड से सम्बद्ध करने की घोषणा भी श्रमण संस्कृति संस्थान के कोषाध्यक्ष श्री ऋषभकुमार जैन ने दी। उक्त पाठशालाओं तथा देश के अन्य भागों में संचालित हो रही तथा होने वाली जैनधर्म की पाठशालाओं एवं लौकिक व धार्मिक शिक्षण संस्थाओं में १ जुलाई २००४ से पाठ्यक्रम समानरूप से लागू होगा। इस बोर्ड के अन्तर्गत ली जाने वाली परीक्षाओं एवं इनके महत्त्व तथा जीवन में उपयोगिता के सम्बन्ध में स्वयं मुनिश्री सुधासागर जी ने प्रकाश डालते हुए कहा कि हमें धार्मिक पाठशालाओं को अवश्य खोलना चाहिए ताकि जैन बन्धु संस्कारित होकर देश के सुयोग्य बन अपना आत्मिक कल्याण कर सकें।

प्रतिष्ठाचार्य दीपक कुमार जैन शास्त्री, परीक्षाप्रभारी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थ-समीक्षा

कुन्दकुन्द का कुन्दन

समीक्षक - डॉ. बी.एल. जैन

कृति - कुन्दकुन्द का कुन्दन

सम्पादक - डॉ. शीतलचन्द जैन ,पं. रतन लाल बैनाड़ा, ब्र. भरत जैन

प्रकाशक - श्री दिग. जैन श्रमण संस्कृति संस्थान सांगानेर जयपुर (राज.)

मूल्य आधा करने में अर्थ सहयोग - श्री विद्याविनोद काला मेमोरियल ट्रस्ट, जयपुर

संस्करण द्वितीय - अक्टूबर २००३, प्रतियाँ-२००० पृष्ठ-१४४, सजिल्द लागत २०रु. विक्रय मूल्य १० रु.

प्रथम शताब्दी के प्रथम आचार्य अध्यात्म जगत के सर्वोपरि प्रभापुंज श्री कुन्दकुन्द स्वामी के प्रमुख ग्रन्थ समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय, अष्टपाहुड, वारसाणुवेक्खा इत्यादि जिनका स्वाध्याय करने से मुक्ति पथ प्राप्त होता है। उन्हीं ग्रन्थों में से विशिष्ट गाथाओं का संकलन कर एक लघु कृति के रूप में कुन्दकुन्द का कुन्दन प्रकाशित किया गया है। प्रस्तुत कृति को जीवन के चार आश्रम की भांति चार अधिकारों में कुन्दकुन्द स्वामी की गाथाओं को मोक्षरूपी माला में पिरोया गया है।

प्रथम अधिकार का नाम रत्नत्रय अधिकार रखा है, नाम के अनुरूप ही मोक्ष मार्ग के तीन अमूल्य रत्न सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यकचारित्र का निरूपण है। मोक्षमार्ग का वर्णन करते हुए लिखा गया है कि व्यवहार मोक्षमार्ग से परम्परा एवं निश्चय मोक्षमार्ग से साक्षात् मोक्ष की प्राप्ति होती है। रत्नत्रय का आधार स्तम्भ सम्यग्दर्शन के नि:शंकित आदि आठ अंग तथा क्षुधा, तृषा आदि १८ दोषों का वर्णन है। सम्यग्ज्ञान का स्वरूप एवं महिमा बतलाकर निश्चय चारित्र एवं व्यवहार चारित्र का स्वरूप व्यावहारिक भाषा में किया गया है। 'चारित्तं खलु धम्मो' अर्थात् चारित्र ही धर्म है। अत: ऐसे धर्म के पालन से ही मुक्ति है। द्वितीय उपयोग अधिकार में द्रव्य-गुण पर्याय का विवेचन करने वाली गाथाओं के संकलन के बाद शुद्धोपयोग एवं शुभोपयोग के स्वरूपों का विवेचन किया गया है। तृतीय ज्ञान ज्ञेय अधिकार में आत्मा की सर्व व्यापकता की चर्चा करके शुद्धनय, सर्वज्ञता, संवर का स्वामी ज्ञानी, शुद्धात्मा का स्वरूप, ध्यान आदि विषयों का समावेश किया गया है। चतुर्थ अधिकार में जैसा कि नाम है श्रामण्य अधिकार में श्रामण्य का स्वरूप श्रमणों की भक्ति का फल जैसे विषयों को रखा गया है, जिस को जीवन में उतारकर मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। कृति की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि कृति में संकलित सभी गाथाओं का आचार्य विद्यासागर जी महाराज द्वारा विरचित पद्यानुवाद भी गाथाओं के साथ दिया गया है। जो सोने पे सुहागा का कार्य करता है जिससे कृति की उपयोगिता और अधिक बढ़ जाती है।

प्रस्तुत कृति में प्रयुक्त गाथाओं का अन्वयार्थ भी दिया गया है, जो बोधगम्य है। अन्वयार्थ के बाद गाथा का अर्थ तथा भावार्थ दिया गया है। भावार्थ में गाथा में प्रयुक्त प्रत्येक शब्द स्पष्ट सुपाठ्य एवं रूचिकर हो, लिखा गया है। कृति की विशेषता यह है कि व्याकरण, भाषा-शैली एवं अन्य अपेक्षाओं से प्रत्येक शब्द शुद्ध तथा सार्थक रखा गया है। इसका कारण है कि कृति का सम्पादन एवं प्रूफ रीडिंग योग्य विद्वानों द्वारा किया गया है। प्रस्ताविकी में कहा गया है कि श्रमण परम्परा में अध्यात्म के आद्य उपस्कर्ता आचार्य कुन्दकुन्द का अध्यात्म आत्मा से ही उत्पन्न होकर आत्मा में ही विलीन हो जाता है, से ओत प्रोत समयसार कृति को महत्त्वपूर्ण गाथाओं का विवेचन स्वरूप प्रस्तुत कृति में सरल भाषा में लिखा गया है। ग्रन्थमाला के सम्पादक ब्र. भरत जी प्रकाशकीय में लिखते हैं कि 'गत वर्ष मुनि श्री सुधासागर जी द्वारा अतिशय क्षेत्र बिजौलिया में संस्थान के छात्रों को कुन्दकुन्द का कुन्दन नामक कृति का अध्ययन कराया गया जिससे इस कृति की उपयोगिता प्रतीत हुई। अल्पकाल के शिक्षण प्रशिक्षण में ही आचार्य कुन्दकुन्द की वाणी को समझने में सुगमता रहे, इसलिए प्रथम संस्करण में केवल सामान्य अर्थ दिया गया था जिसके सम्बन्ध में अनेक पाठकों के अनुरोध हमें प्राप्त हुए कि गाथाओं का संकलन तो अच्छा है परन्तु उनका अन्वयार्थ तथा भावार्थ यदि विस्तृत रूप से दे दिया जाये तो कृति का हार्द समझने में सुविधा होगी। अत: तदनुसार इसके मूल रूप में कुछ वृद्धि भी की गयी है।' ब्रह्मचारी जी के इन शब्दों से स्पष्ट है कि कृति की उपयोगिता पठन-पाठन के लिए आवश्यक तो है ही साथ में शिक्षण प्रशिक्षण के लिए भी आवश्यक है। कृति का प्रकाशन पूर्व में जबलपुर से हो चुका था लेकिन कृति की मांग के कारण पुस्तक को ज्ञानसागर ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित किया गया है। कृति का उपयोग केवल मुनियों तक ही सीमित नहीं है बल्कि श्रावक भी कृति में बताये गये व्यवहार मोक्ष मार्ग का पालन कर जीवन को अनुशासित कर सकते हैं। सामान्य श्रावक के साथ-साथ विद्वत्प्रवर के लिए भी उपयोगी सिद्ध होगी। पुस्तक की एक और यह विशेषता है कि एक पेज पर एक ही गाथा की विषयवस्तु को संजोया गया है। ब्र. भरत जी का कृति के प्रकाशन में सम्पादक कार्य के अलावा अन्य कार्य में भी विशेष सहयोग सराहनीय है। कुन्दकुन्द के कुन्दन से सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति हो, ऐसी भावना है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रजि.नं. UP/HIN/29933/24/1/2001-TC

डाक पंजीयन क्र.-म.प्र./भोपाल /588/2003

मुनि श्री प्रवचन सागर जी एवं
मुनि श्री प्रणम्य सागर जी

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक : रतनलाल बैनाड़ा द्वारा एकलव्य ऑफसेट सहकारी मुद्रणालय संस्था मर्यादित, जोन-I, महाराणा प्रताप नगर, भोपाल (म.प्र.) से मुद्रित एवं सर्वोदय जैन विद्यापीठ 1/205 प्रोफेसर्स कालोनी, आगरा-282002 (उ.प्र.) से प्रकाशित।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org